अखिल भारतीय श्रीहेमचन्द्राचार्य संस्कृत समारोह – 2019

(दिनाङ्कः- 12 से 14 जुन, 2019)

व्याख्यान-माला का संपुट

प्रथम व्याख्यानः-

स्वर्गीय प्रॉफेसर डॉ. तपस्वी नान्दी-स्मृति व्याख्यान (चतुर्थ पुष्प)

वक्ताश्री – प्रॉफेसर डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी, आचार्य, संस्कृत विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी

द्वितीय व्याख्यानः-

प्रॉफेसर डॉ. श्रीमणिभाई प्रजापति विद्योत्तेजक व्याख्यान

वक्ताश्री – प्रॉ. वसन्तकुमार म. भट्ट, शास्त्रचूडामणि, उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी

आयोजक

संस्कृत, पालि-प्राकृत एवं भारतीय विद्या विभाग

श्रीहेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण

वर्षः- 2019

अखिल भारतीय श्रीहेमचन्द्राचार्य संस्कृत समारोह – 2019

(दिनाङ्कः- 12 से 14 जुन, 2019)

व्याख्यान-माला का संपुट

प्रथम व्याख्यानः-

स्वर्गीय प्रॉफेसर डॉ. तपस्वी नान्दी-स्मति व्याख्यान (चतुर्थ पुष्प)

वक्ताश्री – प्रॉफेसर डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी, आचार्य, संस्कृत विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी

द्वितीय व्याख्यानः-

प्रॉफेसर डॉ. श्रीमणिभाई प्रजापति विद्योत्तेजक व्याख्यान

वक्ताश्री – प्रॉ. वसन्तकुमार म. भट्ट, शास्त्रचूडामणि, उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी

आयोजक

संस्कृत, पालि-प्राकृत एवं भारतीय विद्या विभाग

श्रीहेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण

प्रकाशकः-

प्रॉफे. डॉ. देवसिंह राठवा,

अध्यक्ष, संस्कृत एवं भारतीय विद्या विभाग,

हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण

प्रथमावृत्तिः 12, जुलाई, 2019

प्रिन्टर्सः-

विनोद प्रिन्टरी,

महागुजरात, तीन दरवाजा,

पाटण (उ. गुज.)

प्रकाशकीय निवेदनः-

यह सुविदित है कि श्रीहेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण (स्थापना वर्ष- 1986) के संस्कृत एवं भारतीय विद्या विभाग के द्वारा प्रति वर्ष गुजरात के ज्योतिर्धर कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र सूरि जी की परमपावन स्मृति में अखिल भारतीय कक्षा का "श्रीहेमचन्द्राचार्य संस्कृत समारोह" का आयोजन किया जाता है। उसी परम्परा का परिपालन करते हुए, हमारे विभाग के द्वारा इस समारोह का जुलाई, 2019 की 12-13-14 दिनों में आयोजन किया गया है। इस आयोजन का यह 19वाँ वर्ष है, जिसमें समग्र देश के संस्कृत, पालि-प्राकृत भाषा के विद्वानों को निमन्त्रण भेजा गया है। इन विद्वानों के स्वाध्याय-संशोधनमूलक शोधपत्रों से हमारे नवोदित छात्र लाभान्वित होंगे ऐसा हमें विश्वास है।।

इस युनिवर्सिटी में हमारे संस्कृत विभाग का वीजारोपण 1992 में हुआ था, उसके समय हमारे विभाग की धूरा संभालने वाले प्रॉफेसरश्री थे स्वनामधन्य स्वर्गीय डॉ. तपस्वी शम्भुचन्द्र नान्दी जी। उन्ही की पावन स्मृति में विगत तीन वर्षों से देश के सुविख्यात विद्वानों को निमन्त्रित करके, संस्कृत-प्राकृत विद्या के साथ जुडे विषयों पर व्याख्यान करवाया जाता है। इस वर्ष (12-6-2019) काशी विद्यापीठ, वाराणसी के सुविख्यात संस्कृतज्ञ प्रॉफेसर डॉ. श्री प्रभुनाथ द्विवेदी जी प्राकृतभाषा का कथा-संसार पर अपना व्याख्यान प्रस्तुत करने जा रहे हैं। प्रॉफेसर प्रभुनाथ द्विवेदी जी बहुविध प्रतिभा के धनी है, वे न केवल संस्कृत काव्यशास्त्र के विद्वान् है, बल्कि वे संस्कृत कविताओं एवं लघुकथाओं के प्रणेता भी है। समग्र देश के संस्कृत-कवि-समवायों में वे अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करने के साथ, उसका सराहनीय संचालन भी करते रहे हैं। 2017 के वर्ष में भारतदेश के महामहिम राष्ट्रपति जी ने उनको सर्टीफिकेट ओफ ऑनर से सम्मानित भी किये हैं। यह कहना भी बहुत आवश्यक है कि प्रॉफेसर डॉ. तपस्वी नान्दी जी भी उनकी रचनाओं के प्रशंसक भावक थे, तथा प्रॉफेसर श्रीप्रभुनाथ जी उनके प्रीति-पात्र भी थे। अतः आज डॉ. नान्दी जा की स्मृति-माला में उनके द्वारा पिरोया जाने वाला नवीन व्याख्यानपुष्प (4) एक विशेष गरिमा को स्थापित करेगा। हम प्रॉफेसर डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी जी के हृदय से आभारी हैं।। अभी तक इस व्याख्यान-माला में डॉ. वसन्तकुमार म. भट्ट, डॉ. सदाशिवकुमार द्विवेदी एवं डॉ अजित ठाकोर जी के व्याख्यान हो चूके हैं।।

इस हेमचन्द्राचार्य संस्कृत समारोह का दूसरा वैशिष्ट्य यह है कि राष्ट्रपति-पुरस्कृत विद्वान् प्रॉफेसर डॉ. श्री मणिभाई प्रजापति जी ने अपने नाम से एक व्याख्यान-माला का आरम्भ आज से 16 वर्ष पहले से करवाया है, जो निरन्तर रूप से इस समारोह का द्वितीय आकर्षण बन गया है। इस व्याख्यान-माला का शुभारम्भ 2001 से हुआ है, जिसमें सब से पहले व्याख्यान देने वाले विद्वान् थे डॉ. श्रीगौतमभाई पटेल। तत्पश्चात् डॉ. हर्षदेव माधव, डॉ. राजेन्द्र नाणावटी, एम. एल. जोशी, डॉ.श्रीदशरथभाई वेदिया, प्रॉ. गिरिश ठाकर, डॉ. जयदेव जानी, डॉ. वसन्तकुमार भट्ट, डॉ. अजित ठाकोर, डॉ. वी. एन. झा, डॉ. वि. डी. पण्ड्या, डॉ. मल्हार कुलकर्णी, डॉ. हंसाबेन हिंडोचा एवं डॉ. अंबालाल प्रजापति ने क्रमशः व्याख्यान दिये हैं। किन्तु इस वर्ष से प्रॉफेसर प्रजापति के विशेष आर्थिक-अनुदान से इस व्याख्यान को मुद्रित स्वरूप में भी उपलब्ध करवाने का प्रबन्ध किया जा रहा है।।

इस वर्ष के प्रॉफेसर श्रीमणिभाई प्रजापति व्याख्यान-माला में "अभिज्ञानशाकुन्तल की देवनागरी वाचना के तीन रूपान्तरण – एक नयी गवेषणा" विषय पर डॉ. वसन्तकुमार भट्ट का 75 पाण्डुलिपियों पर आधारित अनुसन्धान-कार्य का कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत होने वाला है। इस अनुसन्धान-कार्य का निदर्श संस्कृत के नवोदित अध्यापकों को मार्गदर्शक बनेगा ऐसा हमें विश्वास है ।।

इस प्रसंग पर हम संस्कृत विभाग की ओर से प्रॉफेसर डॉ. तपस्वी नान्दी जी के परिवार-जनों का आभार मानते हैं कि उनके आर्थिक सहयोग से यह व्याख्यान-माला आविष्कृत हुई है। उसी तरह से हम प्रॉफेसर श्री मणिभाई प्रजापति के भी हृदय से आभारी है कि उन्होंने इस विद्यासत्र को तेजस्वी बनाने में बार बार आर्थिक सहयोग दिया है। दोनों महानुभावों के प्रति हम श्रद्धावनत है ।। कलिकालसर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि जी की इस कर्मभूमि में ऐसे अनेकानेक विद्याकीय सत्रों का आयोजन होता रहे ऐसी हमारी अभ्यर्थना है ।।

डॉ. देवसिंह राठवा

अध्यक्ष, संस्कृत एवं भारतीय विद्या विभाग,

हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण

स्वर्गीय प्रॉफेसर डॉ. तपस्वी शम्भुचन्द्र

नान्दी-स्मृतिव्याख्यानमाला, (चतुर्थम् पुष्पम् – 2019)

आयोजक:

संस्कृत एवं भारतीयविद्या विभाग,

श्रीहेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी,

पाटण

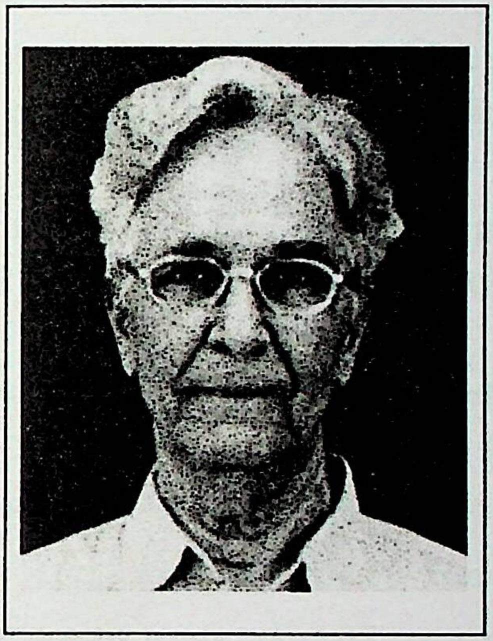

प्राकृतभाषा का कथासंसार

वक्ताश्री – प्रॉफेसर डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी

(राष्ट्रपति-सम्मान से सम्मानित विद्वान्)

आचार्य, संस्कृत विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी

अखिल भारतीय हेमचन्द्राचार्य संस्कृत समारोह

पाटण

॥ श्रीः ॥

॥ प्राकृतभाषा का कथासंसार ॥

(प्राकृत कथा-साहित्य)

प्रो. डॉ. श्री प्रभुनाथ द्विवेदी

पूर्व आचार्य,संस्कृतविभाग,

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,वाराणसी.

याऽपि काऽपि भवेद्भाषा कथा सर्वत्र राजते ।
कथा प्राकृतभाषायां वैशद्यं भजते ध्रुवम् ॥ 1 ॥

सुकुमारः कथाबन्धः प्राकृतस्य विशेषतः ।
सैव प्रस्तुयते कश्चित् सुधियां प्रीतये मया ॥ 2 ॥

कथां विना न साहित्यं साहित्यं का कथा विना ।
अतो हि सर्वसाहित्ये सैव नूनं विशिष्यते ॥ 3 ॥

विषयप्रवेशः

(क) कथा शब्द की व्युत्पत्तिः-- कथ्यते इति कथा = कथ् + अङ् + टाप् ।

(ख) कथा की व्याख्याः—1. 'प्रवन्धकल्पना कथा' - अमरकोषः, (1.6.6), 2. 'कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्' – साहित्यदर्पणः – (6 – 332)

(ग) कथा का उद्भव और विकासः (कथा की कथा) -

- मनुष्यसृष्टि के साथ ही कथासृष्टि ।
- आखेट कथाएं और प्रेम कथाएं –कथा का आरम्भ ।
- शुश्रूषा और कथा (कहानी) –मनोरञ्जन और ज्ञानवर्धन की परम्परा ।
- कथा कथन एवं श्रवण – नेत्रोन्मीलन से अन्तिम श्वासपर्यन्त ।
- सुहृत्सम्मित और कान्तासम्मित उपदेश ; कदाचित् प्रभुसम्मित भी ।
- सवके द्वारा आस्वाद्य - अद्भुत आकर्षणशक्ति, रोचकता, जिज्ञासा, कुतूहल और शिक्षा के समन्वय का निदर्शन ।
- प्राचीनतम वेद और उपनिषद् वाङ्मय में कथा के वीज अर्थवाद, उपमा, रुपक आदि के रुप में सन्निहित । पश्चादुपवृंहण ।
- कोई ऐसी भाषा, साहित्य अथवा समाज नहीं, जिसमें कथा न हो ।
- कथा का अलिखित (मौखिक) वाचिक लोकपरम्परागत) तथा लिखितरुप ।

(घ) कथा के आवश्यक तत्त्वः

(1) वस्तु (2) पात्र (3) संवाद (4) देशकाल (5) प्रकृति, ऋतु, पर्यावरण

(6) शैली और (7) प्रयोजन ।

(ङ) कथा के प्रकारः

1. दृष्टिगत भेद –अकथाः मिथ्यादृष्टि,
विकथाः विकृतदृष्टि,
सत्कथाः सद्धर्मदृष्टि ।

2. आकार-भेद -

1. सकल कथा, 2. खण्ड कथा, 3. उल्लाप कथा, 4. परिहास कथा , 5. सङ्कीर्ण कथा ।

3. वस्तु – भेदः –

1. अत्थकहा (अर्थकथा) 2. कामकहा (कामकथा) 3. धम्मकहा (धर्मकथा)
4. संकिण्णकहा (सङ्कीर्णकथा) ।

4. पात्र – भेदः –

1. दिव्यकथा 2. अदिव्य कथा 3. दिव्यादिव्य (दिव्यमानुषी) कथा ।

(च) प्राकृत कथा साहित्य का कालविभाजनः

1. आगमयुगीन कथाएँ ;
2. टीकायुगीन कथाएँ ;
3. स्वतन्त्र कथाएँ - (अ) हरिभद्रसूरि से पूर्व की कथाएँ ।
(ब) हरिभद्रसूरि की एवं समकालिक कथाएँ ।
(क) हरिभद्रसूरि की उत्तरकालिक कथाएँ ।

।। इति विषयप्रवेशः ।।

।। प्राकृत भाषा का कथासाहित्य ।।

आगमयुगीन कथाएँ :

प्राकृत की आगमयुगीन कथाओं का स्वरूप नितान्त धार्मिक और नैष्ठिक है । ये कथाएँ अपने समय के समाज के धार्मिक (जैन धर्मसम्वन्धी) नियमों (सिद्धान्तों) और व्यवहारों को याथातथ्यतः निरूपित करती हैं । इस कथन का अभिप्राय है कि कथाकार इन कथाओं में अपनी कल्पना का रंग नहीं भरता । ऐसी कथाओं में पात्रविशेष (नायक- नायिकादि) का पूरा चरित अथवा चरित्र, कोई एक आचार अथवा व्रत अथवा, सङ्कल्प अथवा वर्जना सर्वाङ्गतया निरूपित होता / होती है । आगामिक कथाओं की प्रमुख विशेषता है उसकी उपदेशात्मकता और आध्यात्मिकता । इन कथाओं में तीर्थङ्करों,मुनियों, उनके अनुयायियों, शलाका-पुरुषों एवम् अन्य सज्जनों / सत्पुरुषों का जीवनाचार, व्यवहार आदर्श रूप में गुम्फित हैं । जो कथाएँ प्राप्त हैं, उनमें मुख्यतः नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीरस्वामी - इन तीर्थङ्करों के पावनचरित, सम्वद्ध घटनाएँ और उपदेश विशदतया निवद्ध हैं ।

आगमकालिक प्राकृतकथाओं की प्रवृत्तियों का अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि आरम्भ में जो उपमाएं प्रयुक्त थीं उन्हें वाद में कथात्मकता के साथ विस्तार दिया गया और धार्मिक आचारोपदेशों के साथ जोड़ा गया । आगमयुगीन कथाग्रन्थ – 'णाया धम्मकहाओ ' (ज्ञाता धर्मकथाः) में से ऐसे अनेक उदाहरण लिये जा सकते हैं । यथा -

कछुआ का अपने अंङ्गों को सिकोड़ना,
कीचड़ से लिपटी खोखली - सुखी लौकी का भी पानी में डूब जाना,

नन्दीवृक्ष के सुन्दर फलों का हानिकारक होना, इत्यादि।

ये सभी प्रतीकात्मक और नितान्त लौकिक उदाहरण है। इनका उपदेशात्मक रूप क्रमशः इस प्रकार है -

(i) अरक्षित साधु का कष्ट उठाना,

(ii) तीव्रोदयी कर्मपरमाणुओं के भार से आच्छन्न पुरुष का अधःपतन अथ च नरकगामी होना, और-

(iii) लोभनीय विषयों में आसक्त पुरुष का अन्त दुःखद होना।

हम कह सकते हैं कि आगमकालिक कथाओं का उद्भव उपमानों, रूपकों और प्रतीकों से हुआ।

'णाया धम्मकहाओ' में दो श्रुतस्कन्ध है और उनमें कुल मिलाकर दश 'वर्ग' या 'अध्ययन' हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध में नीतिकथाएँ हैं और द्वितीय श्रुतस्कन्ध में धर्मकथाएँ हैं।

धन्नसेट्ठिकहा (धन्यश्रेष्ठिकथा)

'णाया धम्मकहाओ' के सातवें अध्ययन में धन्ना सेठ और उसकी चार वहुओं की कथा दी हुई है। लौकिक धरातल पर यह वहुओं के स्वभाव या बुद्धि-परीक्षण की कथा है। धन्नासेठ के मन में आया कि उसकी गृहस्थी का संचालन और सम्पत्ति में वृद्धि कौन सी वहु कर सकती है ? इसका परीक्षण किया जाय। एक दिन उसने अपनी चारों पुत्रवधुओं को बुलाया और प्रत्येक को विना प्रयोजन बताये धान के पाँच - पाँच दाने दिये। पहली वहू ने, जिसका नाम 'उज्झिका' था, उन सभी पाँचों धान के दानों को तिरस्कारपूर्वक फेंक दिया। दूसरी वहू, जिसका नाम 'भोगवती' था, छिलके उतार कर पाँचों दाने (चावल) खा गयी। तीसरी वहू ने, जिसका नाम 'रक्षिका' था, उन पाँचों दानों को बांधकर (कपड़े में) यथावत् सुरक्षित रख दिया और चौथी वहू ने जिसका नाम 'रोहिणी' था, अपने महल के पीछे, खेत की क्यारी बनाकर, उन दानों को वोया और क्रमशः ऐसा करती हुई कई घड़े धान पैदा किया।

प्रायः वर्ष के पश्चात् धन्ना शेठ ने उन चारों वहुओं को बुलाकर दिए गये धान के उन पाँच दानें के वारे में पूछा। पहली ने कहा – "फेंक दिया"। दूसरी ने कहा – ' छिलके उतार कर खा गयी।" तीसरी ने लाकर उन पाँचों दानों को ज्यों का त्यों श्वसुर के हाथ पर रख दिया और चौथी ने उन पाँचों दानों को क्रमशः अधिकाधिक संख्या में वार-वार बुवाई की वात वताकर पैदा हुए और इकट्ठा करके रखे गये धान के दानें से भी हुए कई घड़े अपने श्वसुर के सामने रख दिये। धन्नासेठ चौथी वहू से वहुत प्रसन्न हुआ और उसकी योग्यता तथा बुद्धिमत्ता देख कर उसने उसे अपने घर की मालकिन वना दिया।

वस्तुतः यह कथा प्रतीकात्मक और उपदेशात्मक है। यहां वधुएँ मुनि की प्रतीक है और धान के पाँच दाने पाँच अणुव्रत - अहिंसा, सत्य, व्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह के प्रतीक है। इस कथा में उत्तम मुनि द्वारा दूसरों का कल्याण करने की वृत्ति की ओर संकेत किया गया है।

आचारांगसूत्र की कथाओं में से एक कथा यहाँ निदर्शनार्थ उद्धृत की जा रही है। -

पुण्डरीक कथा

(सूत्रकृतांग, खण्ड 2, अध्ययन 1)

यह भी एक प्रकार की प्रतीकात्मक कथा है।

एक सरोवर के मध्य में वृहदाकार अत्यन्त सुन्दर श्वेतकमल (पुण्डरीक) खिला हुआ है और अन्य अनेक पुण्डरीकों से घिरा हुआ, देखने वालों के चित्र को आकृष्ट कर रहा है। चारों दिशाओं से घूमते हुए चारों तटों पर चार पुरुष आये। उस सुन्दर पुण्डरीक को प्राप्त करने के लिए वे चारों पुरुष अपनी - अपनी दिशाओं के तट से उस सरोवर में

उतरे। इन चारों पुरुषों को तैरना नहीं आता था। पैरों से चलते हुए वे गहरे पानी में कीचड़ में भी फँस (धैस) गए और चारहो कुछ दूर जाने के वाद आगे न बढ़ सके; फलतः उस मनोरम विशाल पुण्डरीक तक नहीं पहुँच सके और किंकर्तव्यविमूढ से मात्र उसे देखते खड़े रहे।

इसी वीच एक वीतराग पुरुष आया। उसने उस सरोवर की परिक्रमा की। चारों दिशाओं से सरोवर में प्रविष्ट हुए और कीचड़ में फँसे चार पुरुषों को देखकर वह पूरी वात समझ गया। वह तट पर शान्तभाव से खड़ा हो गया और विना किसी वाह्यज प्रयत्न के उसने उस सुन्दर विशाल पुण्डरीक को अपने पास अनायास ही बुला लिया।

इस कथा में प्रतीकों की जो योजना हुई है, वह इस प्रकार है -

सरोवर = संसार, जल = कर्म, कीचड़ = कर्मभोग,

विशाल पुण्डरीक = सद् धर्म रूप राजा, अन्य छोटे पुणडरीक = सामान्य जन अथवा जनसमुदाय, वितराग पुरुष = वृत्ताचार पालक सिद्धमुनि, चार पुरुष = भिन्न - भिन्न मतवादी लोभी व्यक्ति, सरोवरतट = संघ, बुलाना = धर्मोपदेश अथवा मन्त्रदीक्षा, और पुण्डरीक का तट तक आना = संघप्रवेश तथा निर्वाण लाभ। आगमयुगीन कथाएँ इसी प्रकार के प्रतीकात्मक प्रयोगों से विरचित हैं तथा उपदेशप्रद हैं।

टीका-युगीन कथाएँ

यह काल आगमों (सूत्रों) के भाष्य, नियुर्क्ति, चूर्णि और टीकाओं का है। सूत्रगत आगम के गूढ़ विषयों को कथाओं के माध्यम से सरल और स्पष्ट करके, मनोरञ्जक विधि से ग्राह्य बनाया गया है। इस कालखण्ड में कथा साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। अपनी शैलीगत विशेषता के कारण टीकायुगीन कथाएँ अपनी पूर्ववर्ती कथाओं से कई दृष्टियों से भिन्न है। व प्रतीकों का गूढ़ रहस्य भेद कर आगे बढ़ती हुई सामान्य पाठक को भी पहुँच में आ गयी हैं। उन कथाओं में सरसता और मनोरञ्जकता का पर्याप्त प्रवेश हो चुका है। विषयों के चयन और निरूपण में रुचि और वैविध्य का ध्यान रखा जाने लगा था। नवीनता लाने में पात्र और प्रवृत्ति का विशेष योग है। टीकायुगीन कथाओं की अपनी शैलीगत विशेषता पूर्ववर्ती कथाओं से अलग है। आगमयुगीन कथाएँ 'वण्णाओ' से वोझिल थीं। चम्पा या किसी अन्य नगरी के वर्णन द्वारा ही समस्त वर्णनों को अवगत कर लेने का सङ्केत कर दिया जाता था। परन्तु टीका ग्रंथों में प्रयुक्त कथाओं में वर्णनों की छटा सरस है। विषयों का चयन और उसका निरूपण करने में भी विविधता दृष्टिगोचर होती है। इस युग की कथाओं में लघुता का समावेश और उद्देश्य से भटकाव नहोना अपनी विशेषता हैं।

व्यवहारभाष्य और वृहत्कल्पभाष्य में अनेक लोककथाएँ तथा उपदेशप्रद नितिकथाएँ हैं। उनमें मनोरञ्जन भी है और शिक्षा भी है। भिखारी का सपना एक ऐसी ही कथा है। गीदड़ की कथा में उसकी लोभवृत्ति का दुष्परिणाम प्रदर्शित है। गीदड अपने लिए आहार खोजते हुए एक ऐसे स्थल पर पहुँचता है जहां एक मरा हुआ हाथी पड़ा है। वहीं पास में मरा हुआ शिकारी (मनुष्य) और सर्प भी पड़े हैं। थोड़ी दूर तांत (अंतरशर्म) की प्रत्यञ्चा वाला चढ़ा हुआ धनुष्य पड़ा है। गीदड हाथी और शिकारी को देखकर सोचता है कि इनका मांस तो बाद में मजे से महीनों तक खाऊँगा, पहले मैं उस धनुष्य को ताँत को चवाकर इसके रस का आनन्द लेलूँ। ऐसा सोचकर वह धनुष के पास जाता है और ज्यों ही उसकी प्रत्यञ्चा को दांत से काटता है, छूटते ही धनुष का नुकीलासिराल उसके मुँह की ऊपरीतालू में धँस जाता है और वह तीव्र वेदना से छटपटाता हुआ वही मर जाता है। उस तरह अविवेक और व्यर्थ के लोग से वह अपने प्राण गवाँ बैठता है।

उत्तराध्ययन की 'सुखबोध' नामक टीका में छोटी-बड़ी मिलाकर प्रायः सवा सौ कथाएँ घटित हैं। इस टीका के कर्ता वृहद्रच्छीय आचार्य नेमीचंद्र है। इनका अपर नाम देवेंन्द्रमणि भी है। इस कथाओं में परम्परागत प्रचलित मनोरञ्जक वृत्तान्त, जीवजन्तु कथाएँ, जैन साधुओं की आचार कथाएँ नैतिकमूल्यों से भरी उपदेश कथाएँ वर्णित हैं। कल्पना के आश्रय से टीकाकार कथाकार ने बुद्धि को प्रसारित करते हुए कथाओं में चमत्कार का आधान किया है। किसी राजकुमारी का वानरी बनजाना, हाथी द्वारा राजकुमारी को वन में भगा ले जाना पंचायती वासियों द्वारा राजा का निर्वाचन कराना जैसी कथाएँ हैं।

प्राकृत कथाओं में सामान्य जीवन के अनेक प्रसंग गुम्फित पाये जाते हैं।

हरिभद्रसूरी के पूर्व का प्राकृत कथा साहित्यः

हरिभद्र सूरी श्वेताम्बर सम्प्रदाय के विद्याधर गच्छ के शिष्य थे। इनके गच्छपति आचार्य का नाम था जिनभट्ट, दीक्षा गुरु का नाम जिनदत और साध्वी धर्ममाता का नाम था 'याकिनी महत्तरा। हरिभद्रसूरी का जन्म राजस्थान के चित्तौड़ नगर में हुआ था और वे जन्मना ब्राह्मण थे। इनके अद्वितीय पाण्डित्य के कारण वहाँ के राजा जीतारे ने इन्हें अपना राजपुरोहित नियुक्त किया था। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् जैन साधु के रूप में इनका जीवन राजपूताना और गुजरात में ही विशेषतया व्यतीत हुआ।

धर्मपरिवर्तन के कारण इनके जीवन में एक स्थायी मोड आया जिसने ब्राह्मण युवक को राजपुरोहित से उठाकर जैन धर्माचार्य और सुप्रसिद्ध कथा लेखक को अक्षुण्ण कीर्ति का पात्र बनाया। हरिभद्र का एक सङ्कल्प था कि जिसका वचन नहीं समझूँगा, उसका शिष्य हो जाऊँगा। एक दिन वह नगर में राजमार्ग से कहीं जा रहे थे। राजा का मदोन्मत्त हाथी अपना आलानस्तम्भ तोड़कर उसे लेकर नगर में दौड़ने लगा और उसने अनेक नागरिकों को कुचल दिया। दूर्योग से वह हाथी उसी मार्ग पर जा रहा था जिस पर राजपुरोहित जा रहे हैं। हाथी से बचने के लिए ये एक जैन उपाश्रय में भाग कर प्रविष्ट हो गये। वहाँ याकिनी महत्तरा नाम की साध्वी अधोलिखित गाथा का पाठ कर रही थी।

"चक्कीदुगं हरिपणगं चक्कीण केसवो चक्की।

केसवचक्की केसव दु चक्की केसव चक्की य ।।"

इस गाथा का अर्थ हरिभद्र की समझ में नहीं आया। उन्होंने साध्वी से उसका अर्थ पूछा। साध्वीने अपनी असमर्थता व्यक्त की और उन्हें गच्छपति आचार्य जिनदत्त के पास भेज दिया। आचार्य से उस गाथा का अर्थ जानकर वे सन्तुष्ट हो गये और अपने पूर्व सङ्कल्प का स्मरण कर उन्होंने आचार्य से जैन धर्म की दीक्षा लेकर उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। बाद में हरिभद्रसूरि के वैदुष्य और विशुद्धाचार से प्रभावित होकर आचार्य जिनदत्त ने उन्हें अपना पट्टधर आचार्य बना दिया। जिस साध्वी याकिनी महत्तरा के सौजन्य से हरिभद्र ने अपना धर्म परिवर्तन किया, जैन साधु के रूप में नया जीवन आरम्भ किया, उनको उन्होंने अपनी धर्ममाता के रूप में पूज्य मानकर अपने को 'याकिनीसूनु' अर्थात् याकिनी का पुत्र घोषित किया। हरिभद्रसूरि का स्थिति काल विद्वानों द्वारा 770 ई.स. से 850 ई.स. के मध्य माना गया है।

हरिभद्रसूरि की पूर्ववर्ती प्राकृत कथाओं में तरंगवईकहा (तरंगवतीकथा) प्राचीन और महत्त्वपूर्ण है। यधपि तरंगवती सम्प्रत्ति अपने मूलरूप में उपलब्ध नहीं है। किन्तु उसका संक्षिप्त संस्करण 'तरंगलोला' उपलब्ध है। प्राकृत वाङ्मय में तरङ्गवती का उल्लेख यत्र तत्र मिलता है। निशीथचूर्णि, दशवैकालिकचूर्णि और विशेषावश्यकभाष्य में तरंगवती का उल्लेख प्राप्त होता है। उद्योतन सूरिने कुवलयमाला में श्लेष के माध्यम से कहा है कि जिस प्रकार पर्वत से गंगा नदी प्रवाहित हुई है, उसी प्रकार चक्रवाकयुगल से युक्त सुन्दर राजहंसों को आनन्दित करने वाली तरंगवती कथा पादलिप्तसूरि से निःसृत हुई है।

"चक्भाव जुवलसुहया रम्मत्तज रायहंस कयहरिसा।

जस्स कुलपव्वयस्स व वियरइ गंगा तरंगवई ।।"

इस कथाग्रंथ की प्रशंसा धनपाल ने अपनी 'तिलकमंजरी' में भी की है।

"प्रसन्नगम्भीरपथा रथाङ्गमिथुनाश्रया ।।

पुण्या पुनाति गंगेव मां तरङ्गवती कथा ।।"

तरंगवई (तरङ्गवती) के कर्ता पादलिप्तसूरि हैं। वे अयोध्या में एक कुलश्रेष्ठि के पुत्र थे। आठ वर्ष की आयु में उन्होंने विद्याधर गच्छ के आचार्य नागहस्ती से जैन धर्म की दीक्षा ली, ये मथुरा में रहते थे। पादलिप्त- सूरि का स्थितिकाल सन् 78 से 162 के मध्य रहा होगा।

तरंगवती के संक्षिप्त संस्करण 'तरंगलोला' के कर्ता वीरभद्र आचार्य के शिष्य नेमिचन्द्रगणि थे। इन्होंने तरंगवती कथा की रचना के प्रायः 100 वर्ष पश्चात् अपने यश नामक शिष्य के स्वाध्याय के लिए किया था। इसमें 1642 गाथाएँ है। नेमिचन्द्रगणि के अनूमत्त, पादलिप्तसूरी ने तरंगवई की रचना देशी भापामें की थी। यह कथा विस्तृत और अद्भुत रस से युक्त थी।

तरंगवती अथवा संक्षिप्त तरंगलोला की कथावस्तु को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है:--

1. तरंगवती (नायिका) का भिक्षुणी आर्यिका के रूप में राजगृह आगमन।
2. अपनी आत्मकथा सुनाना तथा हंसमिथुन को देखकर पूर्वप्रेम का स्मरण होना।
3. प्रेमी की खोज में संलग्न होना तथा इष्ट प्राप्त हो जाने पर विवाह वन्धन में वंधना
4. अन्ततः विरक्ति और दीक्षाग्रहण ।

संक्षेपतः कथा इस प्रकार है -

राजगृह नगर में चन्दनवाला गणिनी के संघ के साथ सुव्रता नामक तपस्विनी जाती है। दीक्षा लेने से पूर्व सुव्रता का नाम तरंगवती था। एक दिन सुव्रता भिक्षाचर्या के लिए धनपाल श्रेष्ठी के घर जाती है। धनपाल श्रेष्ठी की पत्नी शोमा, सुव्रता के अनुपम रूप - सौंदर्य को देखकर मुग्ध हो जाती है और उससे धर्मोपदेश की प्रार्थना करती है। सुव्रता उसे अहिंसा का उपदेश देती है और नैतिक आचार -पालन हेतु प्रेरित करती है। शोमा, भिक्षुणी सुव्रता की मधुर वाणी से वहुत प्रभावित होती है और उससे पूछती है कि त्रिलोकी का सारा सौन्दर्य लेकर भी वह विरक्त क्यों हो गयी। वह उसका परिचय जानना चाहती है। इस पर सुव्रता (तरंगवती) अपनी कथा कहने लगती है।

'वत्सदेश की राजधानी कौशाम्वी में महाराज उदयन महारानी वासवदत्ता के सहित जव सुखपूर्वक राज्य कर रहे थे, तव वहाँ ऋषभदेव नाम के नगर सेठ थे। ऋषभदेव के आठ पुत्र थे किंतु कन्या एक भी नहीं थी। कन्या की प्राप्ति के लिए पति पत्नी ने यमुना (नदी देवी) की मनौती की। फलतः उन्हें एक कन्यारत्न उत्पन्न हुई। वह कन्या कुशाग्र बुद्धि होने के साथ सुन्दर और यमुना की तरंगो के समान चंचल थी, अतः उसके माता-पिता ने उसका नाम 'तरंगवती' रखा। वह कन्या शीघ्र ही सभी विद्याओं और कलाओं में निपुण हो गयी। अपनी युवावस्था में वह एक दिन सुन्दर शरद ऋतु में अपने अभिभावकों के साथ वनविहार हेतु गयी और वहाँ एक हंसमिथुन को देखकर उसे अपने पूर्वजन्म की स्मृति हो आयी।'

'अङ्ग देश की चम्पानगरी में गंगा के तीर पर एक चकवा - चकवी का जोड़ा निवास करता था। एक दिन एक शिकारी ने जंगली हाथी को मारने के लिए वाण चलाया किन्तु निशाना चूक जाने के कारण वह वाण उस चकवा को जाकर लग गया जिससे उसका प्राणान्त हो गया। शिकारी को वहुत दुख हुआ और उसने लकड़ी एकत्र करके चकवा का दाह संस्कार किया। पति वियोग से व्याकुल चकवी उस चिता की अग्नि में कूद कर जल गयी। उसी चकवी का जीव तरंगवती के रूप में पैदा हुई हूँ। पूर्व भव की इस दारुण घटना का स्मरण आते ही तरंगवती के हृदय में अपने प्रिय से (जो चकवा के जीव के रूप में इस भव में आया होगा) मिलने की तीव्र उत्कण्ठा जागृत हुई। अव प्रिय के वियोग में उसे एक क्षण भी युग के समान प्रतीत होने लगा'। इस के लिए उसने व्रतोपवास करना प्रारम्भ किया।

तरंगवती ने अपने जन्म की उस घटना को अंकित करते हुए एक सुन्दर चित्रपट वनाया और अपनी सखी सारसिका द्वारा नगर के प्रमुख राहों - चौराहों पर प्रदर्शित कराया, फिर भी उसके पूर्व जन्म के प्रेमी - पति के जीव के रूप में जन्मे प्रेमी का पता न चल सका। सारसिका, कार्तिकपूर्णिमा महोत्सव के अवसर पर उस चित्रपट को लेकर नगर के चौक में जा खड़ी हुई। हजारों लोगों ने उस चित्र को देखा, किन्तु किसी में भी कोई प्रतिक्रिया न हुई। कुछ समय पश्चात् सेठ धनदेव का पुत्र पद्म देव अपने मित्रों के साथ महोत्सव का आनन्द लेता हुआ उस चित्रपट के समक्ष पहुँचा और उस चित्र को देखते ही उसे अपने पूर्वभव का स्मरण हो आया। वह एकदम प्रेमविभोर हो उठा। उसका उसने अपने मित्रों की सहायता से चित्रपट के साथ खड़ी युवती से पता लगवाया कि इस चित्र का निर्माण

नगरश्रेष्ठी की पुत्री तरंगवती ने किया है। उसे निश्चय हो गया कि तरंगवती ही उसके पूर्वभव की पत्नी चकवी है। वह घर लौटकर तरंगवती की प्राप्ति के लिए व्याकुल हो गया और अस्वस्थ रहने लगा। पद्मदेव का कोई भी उपचार सफल न होता देख उसके पिता सेठ धनदेव वहुत चिंतित हुए और अपने पुत्र की रुग्णता का कारण जानने का प्रयत्न करने लगे।

अपने पुत्र के हृदय में तरंगवती की उत्कट अभिलाषा जानकर सेठ धनदेव ने तरंगवती के पिता नगरश्रेष्ठी ऋषभदेव से अपने पुत्र के लिए उसकी कन्या की याचना की, किन्तु नगरश्रेष्ठी के लिए यह अपमान की वात थी उसकी पुत्री का विवाह एक सामान्य सेठ के पुत्र से हो। अतः उसने साफ ही मना कर दिया। धर्मदेव लाचार हो गया और उसके पुत्र पद्मदेव का काम-ज्वर उत्तरोत्तर विषम होता गया।

जव तरंगवती को यह वृत्तांत ज्ञात हुआ, तो उसने अपने पूर्वभव के पति पद्मदेव से स्वयं मिलने का निश्चय किया और सखी की सहायता से मध्यरात्रि में घर से निकलकर पद्मदेव के पास पहुँची। जन्म - जन्मांतर के प्रेम को सार्थक बनाने के लिए उन्होंने नगरत्याग का निश्चय किया। फलतः रात्रि में ही वे दोनों अन्यत्र जाने के लिए निकल पड़े। मार्ग के घने जंगल में चोरों का वसेरा था। वे चोर अपने सरदार के आदेश से देवी कात्यायनी को प्रसन्न करने के लिए नरवलि देना चाहते थे। उनके भाग्य से पद्मदेव स्वयं ही उन चोरों की बस्ती में पहुँच गया जिसे चोरों ने पकड़ लिया और उसे देवी की कृपा जानकर नाचने - गाने लगे। तरंगवती सहसा इस विपत्ति से आक्रांत होकर विलाप करने लगी। उसका करुण विलाप सुनकर एक चोर को दया आ गयी और उसने पद्मदेव को मुक्त ही नहीं किया, अपितु उन दोनों को सुरक्षित मार्ग से घोर जंगल से बाहर भी निकाल दिया। वे दोनों अनेक गांवों नगरों में विचरण करते हुए एक सुन्दर नगरी में पहुँचे।

इधर तरंगवती के माता-पिता सहसा तरंगवती के घर से गायव हो जाने से बहुत दुखी हुए। उन्होंने उसकी खोज के लिए अनेक विश्वसनीय व्यक्तियों को लगाया। वे लोग चारों दिशाओं में तलाशने गये। उनमें से एक कुल्मास नाम का नौकर उस नगरी में पहुँचा जहाँ पद्मदेव के साथ तरंगवती रह रही थी। नगर में ढूंढते हुए वह उसे मिल गयी। वह तरंगवती को पद्मदेव के साथ कौशाम्वी नगरी ले आया। दोनों के माता-पिता ने प्रसन्नतापूर्वक उनका विवाह कर दिया।

कथा के अन्त में तरंगवती को अपने वैराग्य के वारे में वताया। एक समय वह अपने पति के साथ वसन्त ऋतु में वनविहार के लिए गयी थी। वहाँ उन्हें एक मुनिराज के दर्शन हुए। मुनिराज ने उन्हें अपनी आत्मकथा सुनाई जिसे सुनकर उन्हें वैराग्य हो गया और ये दोनों उन्हीं मुनिराज से दीक्षित हो गये। उसने सेठानी शोभा से कहा कि वह तरंगवती ही मैं सुव्रता हूँ।

समस्त तरंगवई (तरंगवती) कथा आत्मकथा के रूप में उत्तमपुरुष में वर्णित है। इसमें शृंगार, करुण आदि रसों की अभिव्यक्ति हुई है। प्रेम को नाना अवस्थाओं, वाह्य और अन्तः संघर्षात्मक द्वन्दों तथा चरितों का स्वाभाविक और विशद चित्रण हुआ है। यहां प्रेम विकास की भारतीय पद्धति निरूपित हुई है जिसमें प्रेम का आरम्भ नारी की ओर से होता है। तरंगवती का प्रेम अत्यन्त उदात्त भाव-पूर्ति पर प्रतिष्ठित है। कथा में पाठकों / श्रोताओं को वांधे रखने की पूर्ण क्षमता है।

वसुदेवहिण्डी

हरिभद्रसूरि के पूर्ववर्ती प्राकृतकथा साहित्य में वसुदेवहिण्डी अप्रतिम कथाग्रन्थ है। विश्वकथा साहित्य मे वसुदेवहिण्डी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस प्रकार गुणाढ्य ने पैशाची प्राकृत में नरवाहन-दत्त की बृहत्कथा का प्रणयन किया है, उसी प्रकार संघदास गणिने वसुदेव के शतवार्षिक भ्रमण-वृत्तान्त को निरूपित करते हुए 'वसुदेवहिंण्डी' का निर्माण किया है। श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव के नाम पर इसे 'वसुदेवचरित' भी कहा जाता है।

इस कथा ग्रन्थ के दो खण्ड है। प्रथम खंड के कर्ता संघदास गणि हैं। इसमें 29 लम्भक और ग्यारह हजार श्लोक-प्रमाण ग्रंथ का विस्तार है। द्वितीय खणड के रचनाकार धर्मदास गणि हैं। इसमें 71 लम्भक और सत्रह हजार श्लोक प्रमाण ग्रन्थ का विस्तार है। इस तरह दोनों खंडों में कुल मिलाकर सो लम्भक हैं। इस ग्रंथ का निर्माण काल अनुमानितः चतुर्थ शताव्दी ई.स. है। विद्वानों का अनुमान है कि 'पञ्चतंन्त्र' की कथाओं के निर्माण में वसुदेवहिण्डी की कथाओं का उपयोग किया गया है।

द्वितीय खंड के निर्माण में धर्मदासगणि ने अपना कथासूत्र 29 लम्भक से आगे नहीं चलाया है अपितु 18 लम्भक मे प्रियंगुसुन्दरी की कथा से अपने 71 लम्भकों की कथा का सूत्र जोड़ा है। इस प्रकार धर्मदास ने संघदास की मूल वसुदेवहिंण्डी के पेट में ही अपने सभी 71 लम्भकों को वड़ी चतुराई से भर दिया है। तथ्य यह है कि संघदासगणि का 29 लम्भकों वाला वसुदेवहिण्डी अपने आप में पूर्ण है। धर्मदासगणि ने 71 लम्भकों वाला कथाग्रन्थ वसुदेवहिण्डी स्वतंत्ररूप से वनाया और अत्यन्त कौशल पूर्वक उसे संघदासगणि की कृति के मध्य में 'रफू' कर दिया गया, 'वेल्ड' कर दिया। यह जोड़ अलग से दिखाई नहीं देता।

वसुदेवहिंण्डी के आरम्भ में कथोत्पत्ति प्रकरण के पश्चात् 'धम्मिल्लहिंण्डी' नामक एक महत्त्वपूर्ण प्रकरण है। धम्मिल्लहिण्डी में किसी सार्थवाह पुत्र 'धम्मिल्ल' की कथा वर्णित है। जिसमें देश - देशान्तर में भ्रमण करके 32 विवाह किये थे। धम्मिल्लहिण्डी का परिवेश सार्थवाहों के संसार से गृहीत है। इसे एक स्वतंत्र रचना माना जा सकता है। इसकी कथा का मूल केन्द्र नरवाहनदत्त है जिसने भी कई विवाह किये थे। धम्मिल्लहिण्डी में शीलमती, धनश्रीविमलसेना ग्रामीण गाड़ीवान, वसुदत्तख्याता और रिपुदमन नरपति के सुन्दर लोककथानक हैं। वसुदेवहिण्डी में उल्लेख है कि वसुदेव सौ वर्षों तक भ्रमण करते रहे और उन्होंने सौ विवाह किये थे।

धम्मिल्लहिण्डी को छोड़कर वसुदेवहिण्डी में छः विभाग हैं – कथोत्पति, पीठिका मुख, प्रतिमुख, शरीर और उपसंहार। कथोत्पत्ति, पीठिका और मुखविभाग में कथा का प्रस्ताव हुआ है। इनमें कई कथाएँ (आख्यान) वर्णित हैं जिनमें महेश्वदत्त की कथा उल्लेखनीय है।

ताम्रलिप्ति नगरी में महेश्वरदत्त नामक सार्थवाह रहता था। इसके पिता का नाम समुद्रदत्त था। परिग्रह संचय और लोभवृत्ति के कारण मरने के वाद वह उसी नगर में महिष हुआ। समुद्रदत्त की पत्नी भी मरने के बाद पापाचार के कारण नगर में बहुला नाम वाली कुत्तिया होकर पैदा हुई। महेश्वरदत्त की पत्नी का नाम गांगिला था। वह परिवार में गुरुजनों के न रह जाने के कारण स्वैरिणी हो गयी। एक दिन साउह नामक पुरुष गांगीला के साथ रमण करने के लिए आया। उस समय महेश्वरदत्त आया था और उसने साउह को मारा जिससे वह थोड़ी दूर जाकर भूमि पर गिर पड़ा और सोचने लगा कि मैंने अपने पापाचार का उचितफल प्राप्त कर लिया। इस प्रकार पश्चाताप करने के कारण विशुद्ध परिणाम प्राप्त कर वह गांगील के गर्भ से महेश्वरदत्त के पुत्र के रूप में जन्मा।

महेश्वरदत्त ने अपने पिता का वार्षिक श्राद्ध करने के लिए उस महिष को खरीद कर उसका मांस पकाया। एक साधु अर्थचर्या के लिए भ्रमण करता हुआ वहाँ आया और यह दृश्य देखकर वापस लौटने लगा। महेश्वरदत्त ने साधु को विनती कर के रोका और लौटने का कारण पूछा। उस साधुने कहा कि जिसका तुम वार्षिक श्राद्ध कर रहे हो, उसी का मांस तुमने पकाया है और तुम्हारी मां यह कुत्तिया अपने पति की हड्डियाँ चवा रही है। अब यह जो पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह तुम्हारा पूर्व जन्म में शत्रु था तथा तुम्हारी पत्नी व्यभिचारिणी है। ऐसे में यहाँ कैसे रुक सकता हूँ ? यह सव जान सुनकर महेश्वरदत्त को विरक्ति हुई और उसने श्रवण दीक्षा ग्रहण करली।

वसुदेवहिण्डी के पीठिका भाग में प्रद्युम्नकुमार के जन्म, उसका अपहरण, उसके पूर्वभव की कथा है। अपहरण के पश्चात् वापस माता-पिता से मिलने तथा उसे विवाह की कथा वर्णित है। मुख नामक विभाग का आरम्भ शंव और भानु को क्रीडाओं से हुआ है। शंब के पास एक सारिका थी और भानु के पति एक शुक था। दोनों परस्पर सुभाषित करते हैं। शुक कहता है -

"सोत्सु जाअए सूरो सहस्सेसु य पंडिओ ।
वत्ता सयसहस्सेसु दाया जाअई वा ण वा ।।
इंदियाण जण सूरो धम्मं चरइ पंडिओ ।
वत्ता सच्चवओ होइ दाया भूयहिए इओ ।।"

सारिका भी शंव द्वारा प्रेरित होकर सुभाषित पाठ करती है -

"सब्वं गीयं विलविअं सब्वं नट्टं विडंविअं ।
सव्वे आहरणा भारा सव्वे कामा दुहावहा ।।"

प्रतिमुख विभाग में अंधकवृष्णि का परिचय देते हुए उसके पूर्वभवों की कथा वर्णित है । अंधकवृष्णि के जेष्ठ पुत्र का नाम समुद्रविजय और कनिष्ठ पुत्र का नाम वासुदेव था । वासुदेव की कथा में कहा गया है कि सत्यभामा के पुत्र सुभान के विवाह के लिए 108 कन्याओं का चयन किया गया था किंतु उनका विवाह सुभान से ना करके रुक्मणी के पुत्र साम्ब से कर दिया गया । इस पर प्रद्युम्न ने वसुदेव से कहा –' देखिए, शाम्ब ने राजमहल में वैठे-वैठे अनायास 108 वधुएँ प्राप्त करली जवकि आप सो वर्षों तक घूमते - भटकते रहे और सौ ही मणियाँ (वहुएँ) प्राप्त कर सके ।' इस पर वसुदेव ने कहा 'साम्ब तो कुएँ का मेंढक है, जो अनायास देवयोग से प्राप्त भोग से संतुष्ट हो गया । मैंने तो स्वेच्छया यथेच्छ पर्यटन करते हुए नाना प्रकार के सुख - दुःखों का अनुभव किया है । शायद ही ऐसा कोई हो जिसके जीवन में ऐसा उत्तार - चढाव आया हो और जिसने मेरे जितना अधिक पर्यटन किया हो । पर्यटन से रत्नों की प्राप्ति तो होती ही है, नाना प्रकार के अनुभवों का भण्डार संचित होता है और मनुष्य के ज्ञान की वृद्धि भी होती है तथा सम्वन्धों में विस्तार भी होता है ।' वसुदेव का यह कथन इस प्रकार है –

'संव्वो कूवदद् दुरो इव सुहागयभोगसंतुट्ठो,
मया पुण परिब्भमंतेज जाणि सुहाणि दुक्खाणि य
अणुभूयाणि अण्णेज पुरिसेज दुक्करं होज्ज त्ति चिंतेमि ।'

इसके बाद वसुदेव सौ वर्षों के पर्यटन की आत्मकथा सुनाता है, जो मनोरंजक है । वसुदेवहिण्डी के शरीर नामक विभाग में 29 लम्भक है । इन लम्भकों में प्राचीन चरित्र और पौराणिक आख्यानों को अपनी तरह से परिवर्तित करके रखा गया है । विष्णुकुमार का चरित्र, चारुदत्त की आत्मकथा, गन्धर्वदत्त तथा अभितगति विद्याधर का आख्यान उपनिवद्ध है । आगे त्रिदण्डी याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ में पराजित होकर वाराणसी की सुलसा नामक परिव्राजिका उसकी सेवा शुश्रूषा करने लगी इन दोनों से पिप्पलाद का जन्म हुआ जिसे माता - पिता ने शैशव में छोड़ दिया । रुष्ट होकर आगे पिप्पलाद ने मातृमेध और पितृमेध जैसे यज्ञों का प्रतिपादन करने वाला 'अथर्ववेद' वनाया ।

तीर्थंकर ऋषभदेव का चरित आगे के लम्भकों में वर्णित है । ऋषभदेव ने ही प्रजा को अग्नि का उपयोग प्रकाश करने तथा भोजन पकाने के लिए वताया । ऋषभदेव के निर्वाण के पश्चात् उनके पुत्रों भरत और वाहुवली के मध्य युद्ध का वर्णन है । आगे चलकर नारद पर्वत और वसु का संवाद है । रामचरित का भी वर्णन है । इसमें कहा गया है कि सीता मन्दोदरी की पुत्री है । उसे एक सन्दूक में रखकर लंका से दूर विदेहराज जनक की उद्यान भूमि में गढ़वा दिया गया था और जनक द्वारा हलकर्षण करते समय उसकी प्राप्ति हुई थी । देवकी चरित में कंस के पूर्वभव की कथा वर्णित है । पूर्वभव में कंस एक तपस्वी था । उसने मासोपवास का व्रत ग्रहण कर रखा था । मथुरा के राजा उग्रसेन ने उसे पारणा का निमन्त्रण दिया । वह तीन मास तक पारणा के लिए उग्रसेन के महल में जाता रहा किन्तु किन्ही कारणों से हरवार उग्रसेन उसकी प्रारणा नहीं करते थे । 'उग्रसेन जानवूझ कर उसे परेशान करता है'- ऐसा तपस्वी के मन में दृढ़ निश्चय हुआ और उसने वैरपूर्वक निदान वाँधा कि अगले भव में मैं उग्रसेन का वध करूंगा । इस निदान के कारण वह तपस्वी कंस होकर उसके पुत्र के रूप में जन्मा ।

इस प्रकार, वसुदेवहिण्डी में अनेक लौकिक कथाओं, पौराणिक चरितों तथा अर्ध इतिहासिक वृत्तों का सङ्कलन है । इस ग्रंथ में उपदेशात्मक छोटी - वड़ी अनेक कथाएँ हैं । इस ग्रन्थ की सवसे वड़ी विशेषता है कि यह

कथा ग्रंथ संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की अनेक कथाओं का उपजीव्य है। वसुदेवहिण्डी में महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग किया गया है और यह कथाग्रन्थ गद्य की वैदर्भी शैली में निवद्ध है।

हरिभद्रसूरिकृत प्राकृतकथायें

हरिभद्रसूरि का परिचय पूर्व में दिये जाने के कारण आप सबको सुविदित है। इनके वैदुष्य के साथ ही इनका कर्तृत्व भी अवर्णनीय है। इनकी भावयित्री और कारयत्री प्रतिभा अपूर्व थी। राजशेखर सूरी ने अपने 'प्रवन्धकोश' में हरिभद्रसूरि के धर्म, दर्शन, न्याय, कथासाहित्य, योगसाधनादि विषयक 1440 ग्रन्थों का उल्लेख किया है। इनकी रचनाओं में हृदय की सरसता के साथ ही पाण्डित्य (बुद्धि) की प्रौढता भी स्पष्टतः परिलक्षित है। इनके द्वारा रचित साहित्य अधिकांशतः कथाप्रधान है। समराइच्च कहा भी इनका प्रसिद्ध कथाग्रन्थ है इसकी संक्षिप्त कथावस्तु प्रस्तुत है -

समराइच्चकहा (समरादित्यकथा)

समराइच्चकहा के मूल में प्रधानतः प्रतिशोध की भावना है। हरिभद्रसूरीकृत इस कथा पर वसुदेवहिण्डी की उग्रसेन और कंस की कथा का प्रभाव है। कथा में वस्तु की जितनी प्रौढता है उतना ही मनोरंजन भी है। समरादित्य उज्जयिनी का राजकुमार है। इस कथा में उसके नौ भवों (जन्मों) का वृतान्त वर्णित है।

समरादित्य का प्रथम पूर्वजन्म का नाम गुणसेन था और प्रतिनायक का नाम था अग्निशर्मा। कथा इस प्रकार चलती है - जम्बूद्वीप के विदेश में क्षितिप्रतिष्ठित नामक नगर में पूर्णचन्द्र नाम का राजा अपनी पटरानी कुमुदिनी देवी के साथ सुखपूर्वक राज्य करता था। इस राजदम्पती को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई और उसका नाम 'गुणसेन' रखा गया। उसी समय राजा पूर्णचन्द्र के राजपुरोहित यज्ञदत्त को भी पुत्र हुआ जो शरीर से कुरूप था और उसका नाम अग्निशर्मा रखा गया। राजकुमार गुणसेन के साथ खेलने वाले बच्चों की टोली में पुरोहित का पुत्र अग्निशर्मा भी था, जिसका उपहास गुणसेन और अन्य बच्चे करते थे। प्रायः अग्निशर्मा को गधे पर बैठा कर उसके सिर पर टूटे हुए सूप का क्षेत्र लगाकर ढोल, मृदंग, बांसुरी आदि बाजे बजाते हुए गुणसेन बच्चों के साथ उसे नगर के राजमार्ग पर घूमाया करता था। राजकुमार गुणसेन के इस व्यवहार से अग्निशर्मा अपना अपमान जानते हुए अत्यंत दुःखी रहता था। अपने इस जीवन से ऊब कर वह कौण्डिन्य नामक एक तपस्वी कुलपति के पास गया और उनसे उसने दीक्षा ग्रहण की और व्रत बाँध कर तपस्या में लीन रहने लगा।

इधर महाराज पूर्णचन्द्र राजकुमार गुणसेन को राज्याभिषिक्त कर रानी के साथ तपोवन में चले गये, राजा गुणसेन ने चतुरतापूर्वक शासन आरम्भ किया। एक गुणसेन वन विहार में गया और वहाँ सहस्राम्र उपवन में जा कर रहा था कि दो तापस कुमार आये। उन्होंने राजा का अभिनन्दन करके कहा कि कुलपति महोदय ने हमें आपकी कुशलवार्ता जानने के लिए भेजा है। गुणसेन ने पूछा- 'भगवन् कुलपति कहाँ निवास करते हैं।' तापसकुमार बोले- 'यहाँ से नातिदूर, वे सुपरितोष नामक तपोवन में विराज रहे हैं।'

राजा ने सविनय जाकर कुलपति के दर्शन किए और सफाई कर अपने यहाँ भिक्षाग्रहण करने का निमन्त्रण दिया। कुलपति ने राजा का निमन्त्रण स्वीकार करते हुए कहा कि मेरे आश्रम के एक तपस्वी को छोड़कर शेष सभी मेरे साथ चलेंगे। वे अग्निशर्मा नामक महातपस्वी मास में मात्र एक बार भिक्षा ग्रहण करते हैं। जिस दिन उनकी तपोवन की परिक्रमा होती है, वे किसी एक घर में भिक्षा के लिए जाते हैं। यदि भिक्षा नहीं मिली तो वो लौट आते हैं और फिर एकमहिने के बाद ही भिक्षार्थ जाते हैं।

राजा ने कहा- 'भगवन् ; मैं कृतार्थ हो गया। वे महातपस्वी कहाँ होंगे / मैं उनके दर्शन का अभिलाषी हूँ।' कुलपति बोले 'वत्स, वे उग्रतपस्वी वहाँ आम्रवीथी में ध्यान कर रहे हैं।' गुणसेन शीघ्र ही अग्निशर्मा के पास पहुँचे और प्रणाम किया। तपस्वी ने आशीर्वाद देकर राजा को सुखासन पर बैठाया। राजा ने पूछा- 'भगवान् ; आपके इस

अतिदुष्कर तपश्चरण का हेतु क्या है। तपस्वी अग्निशर्मा ने उत्तर दिया – 'राजन्, दारिद्रयदुःख, कुरूपता, दूसरों के द्वारा किया गया अपमान और कल्याणमित्र राजकुमार गुणसेन ही मेरी विरक्ति के मूल में हैं ।' अपना नाम सुनकर सशंकित राजा ने पूछा- 'यदि गुणसेन आपकी विरक्ति के कारणों में एक हैं, तो वे कल्याणमित्र कैसे हुए;' अग्निशर्मा ने कहा- 'उत्तम पुरुष स्वयं धर्म धारण करते हैं और मध्यम कोटी के पुरुष अन्य से प्रेरित होकर धर्म आचरण करते हैं । यदि कुमार गुणसेन मेरा अपमान नहीं करते तो शायद में इस मार्ग में प्रवृत्त नहीं होता । अतः जैसे भी हो, गुणसेन की प्रेरणा से ही मैं तपस्वी बना, अतः वे मेरे कल्याणमित्र हुए ।' यह सुनकर राजा गुणसेन को वहुत पश्चाताप हुआ और उन्होंने अग्निशर्मा से क्षमा-प्रार्थना की । अग्निशर्मा ने कहा – 'महाराज आपका स्वागत है । वस्तुतः मैं आपका ऋणी हूँ यह आपकी महत्ता है जो आप स्वयं को धिक्कार रहे हैं । आपने मुझ पर भारी उपकार किया है ।' गुणसेन ने विनम्रभाव से निवेदन किया – 'भगवान् आप अत्यन्त उदार है । मैं आपको अपने यहाँ भोजन के लिए निमन्त्रित करता हूँ ।' अग्निशर्मा ने कहा- 'मैं महीने में मासोपवास व्रत की पारणा मैं मात्र एक वार भोजन ग्रहण करता हूँ । अतः अवसर आने पर मैं अवश्य आपके यहाँ इस निमित्त से आऊंगा ।'

अग्निशर्मा से आश्वासन पाकर गुणसेन लौट गए और अगले दिन उन्होंने आश्रमवासी तपस्वियों के साथ पहुँचे हुए कुलपति कौण्डिन्य समेत सभी का सत्कार करके भिक्षा ग्रहण कराई । मासोपवास की पारणा का दिन आने पर तपस्वी अग्निशर्मा राजभवन में गया । उस दिन राजा शिरोवेदना से पीड़ित था और किसी ने भीं इस स्थिति में अग्निशर्मा की परवाह न की । वह बिना भिक्षा ग्रहण किये ही वापस चला आया । राजा का कष्ट दूर हुआ और उसे अग्निशर्मा के आगमन का ज्ञान हुआ तो वह भागा - भागा उसके पास जाकर क्षमापूर्वक पुनः चलने के लिए निवेदन करने लगा किन्तु अग्निशर्मा ने अपने व्रत का नियम वता कर मना किया । अगली पारणा के दिन भी जव अग्निशर्मा राजभवन पहुँचा तो वहाँ पड़ोसी राजा के साथ गुणसेन ने युद्ध की तैयारियों में व्यस्त था । अग्निशर्मा के लौटकर और जव परिजन के दिन तीसरी बार राजभवन में गया तो पूरा राजमहल पुत्रजन्मोत्सव की खुशी में डूबा हुआ था और किसी ने अग्निशर्मा की सुधि नहीं ली ।

अब तो अग्निशर्मा के मन में आया कि यह राजा बचपन से ही मुझ से द्वेष करता रहता रहा है और अभी भी आप उपर से विनय का ढोंग करके मुझे अंकारण परेशान कर रहे हैं । अतः क्षुधा से पीड़ित उसने क्रोध के वशीभूत होकर हृदय में निदान बाँधा कि यदि मेरे धर्माचरण का कुछ भी फल हो तो इस राजा गुणसेन को मारने के लिए मेरा जन्म हो । मैं इससे प्रतिशोध अवश्य लूंगा । वह अमरावती में आकर अपने आसन पर बैठ गया और आजीवन आहार का त्याग कर दिया । आश्रम के तपस्वियों और स्वयं कुलपति ने उसे बहुत समझाया किन्तु वह अपने संकल्प से नहीं डिगा ।

राजा हर बार अपनी चूक पर पश्चाताप करता है और निर्मल हृदय से अग्निशर्मा से क्षमा-याचना करता है । किन्तु अन्ततः अग्निशर्मा का अपमानित वनंता है । इधर अग्निशर्मा ने निरन्तर उपवास करके देहत्याग कर दिया ।

गुणसेन ने एक दिन विजयसेनाचार्य का दर्शन किया और विरक्त होकर अपने पुत्र को राज्य सौंप कर दीक्षित हो गया । अग्निशर्मा जो विद्युत्कुमार के रूप में उत्पन्न हुआ था, उसने पिछले जन्म के वैर का स्मरण कर तपोलीन विरक्त राजा के ऊपर तप्तधुलि की वर्षा की, किन्तु गुणसेन शांतभाव से तपश्चरण में लगा रहा । अन्ततः वह भी शरीरत्याग कर चन्द्रानन विमान में देव हुआ । इस तरह नौ (भवों) में वैर वाँधे हुए अग्निशर्मा के जीवन में गुणसेन के जीव को यातनाएँ दी अन्त में समरादित्य मत में गुणसेन मुक्तिलाभ करता है । और अग्निशर्मा गिरिसेन के रूप में नरकगामी होता है । 'समराइच्चकहा' का साहित्य वैशिष्ट्य तो है ही वसुदेवहिण्डी के समान, इसमें भी तत्कालीन समाज और संस्कृति का सुन्दर निरूपण हुआ है ।

आचार्य श्री हरिभद्रसूरी द्वारा विरचित सैकड़ों लघुकथाएँ है जिनका अन्दाज वड़ा ही चुटीला है । ऐसी कथाओं में से एक है **'धुत्ताक्खान' (धूर्ताख्यान)** संक्षेपतः वह इस प्रकार है – 'एक दिन उज्जयिनी नगरी के समीप एक सुरम्य और विशाल उपवन में ठगविद्या में निष्णात पाँच धूर्तनायक - मूलदेव कंडरीक, एलाषाढ, शश और खण्डवाला

विभिन्न दिशाओं से पहुँचे, खण्डवाला स्त्री ठग थी और शेष पुरुष ठग । प्रत्येक पुरुष ठग-नायक के साथ पाँच सौ धूर्तपुरुष थे और खण्डवाला के साथ धूर्तस्त्रियां थी । जब यह लोग उपवन में आये तो घनघोर वर्षा हो रही थी । नगर में जाकर ठगविद्या के सहारे कुछ अर्जित करना संभव न था । और सभी भूखे थे । आपस में विचार करके पाँचों धूर्तराजों ने यह तय किया कि प्रत्येक अपने जीवन का विशिष्ट अनुभव सुनाये और जो धूर्तराज उसको अविश्वसनीय और असत्य-सिद्ध कर दे, वह आज सारी मण्डली को भोजन कराए और जो प्राचीन कथानको से उसका समर्थन करते हुए उसकी सत्यता में विश्वास दिला दे, उसे सभी धूर्तो का राजा वना दिया जाये । इस पर पाँचों सहमत हो गये और सभी ने रामायण, महाभारत, पुराणों की असम्भव वातें का भण्डाफोड करने के लिए कल्पित आख्यान सुनाये । एक से एक विलक्षण आख्यान थे किन्तु किसी की सर्वप्रभुता स्थापित न हो सकी । अन्ततः खण्डवाला किसी तरह नगर में गयी और अपनी चतुराई से एक सेठ की वहुमूल्य रत्नजडित अंगूठी प्राप्त करके वाजार से खाद्य-साम्रग्री खरीद कर ले गयी । सभी धूर्तों ने उस दिन भरपेट भोजन किया ।

इसी प्रकार हरिभद्रसूररि की एक 'अश्रुतपूर्व' लघुकथा है । एक नगर में कोई परिव्राजक सोने का पात्र (अथवा कंगन) लेकर भिक्षाटन करता था । उसने घोषणा कर रखी थी कि यदि कोई मुझे अश्रुतपूर्व वार्ता सुनाएगा तो उसे मैं यह स्वर्ण पात्र दे दूँगा । कई लोगों ने बहुत सी विलक्षण बातें सुनाई परन्तु उसने, 'यह तो मैंने पहले सुन रखी है'- ऐसा कहकर उन्हें निराश कर देता था । एक श्रावक ने जाकर उस परिव्राजक से भरी भीड़ में सवको सुनाते हुए कहा कि तुम्हारे पिता ने मेरे पिता से प्रयोजनवश एकलाख स्वर्णमुद्राएँ उधार ली थीं । यह सुनकर परिव्राजक की गति साप छछूंदर की हो गयी । यदि वह कहें कि यह मेरे द्वारा श्रुतपूर्व है तो उसका नैतिक दायित्व है कि वह पिता द्वारा लिए गये ऋण को चुकता करे । और, यदि कहें कि यह तो मैंने पहले कभी नहीं सुना, तो वह स्वर्णपात्र से हाथ धो वैठे । अन्ततः उसने वह स्वर्णपात्र उस श्रावक को दे दिया ।

हरिभद्रसूरि की एक अन्य उपदेशात्मक कथा भी उल्लेखनीय है जो परिग्रह विषयक है । दो सगे भाई अपने घर से बाहर धन कमाने के लिए गए । उन्होंने सौराष्ट्र में जाकर हजारों रुपए कमाए । उन रुपयों को लंबी - गोल वड़ी मजबूत थैली में भर कर वापस अपने घर की ओर चले । रुपयों से भरी थैली वजनी थी । अतः वे थैली को वारो-वारो से ढोते हुए लेकर चलने लगे । थैली जिसके सिर या कन्धे पर रहती उसके मन में विचार आता कि यदि भाई को किसी तरह मार डालूं तो यह सारे रुपए मेरे हो जाएंगे । इस प्रकार वे मार्ग में एक - दूसरे के वध का उपाय सोचतें रहते थे । जब वे एक नदी के किनारे पहुँचे तो छोटे भाई को विचार आया कि मुझे धिक्कार है जो मैं अपने बड़े भाई के वध की बात सोच रहा हूं । वह अपने इस निन्दनीय विचार से दुःखी होकर रोने लगा । बड़े भाई ने रोने का कारण पूछा तो छोटे ने सब सच - सच बता दिया । अब तो बड़े भाई ने भी अपने गन्दे मन की पूरी बात कर दी । दोनों परस्पर गले मिलकर खूब रोये और उनके मन का सारा मैल धुल गया । दोनों ने कहा कि यह रुपयों की थैली, इस पापभावना की उत्पत्ति का कारण है । इस लिए उन दोनों ने उस थैली को वही नदी के गहरे पानी में डाल दिया और हँसी खुशी घर चले आये । कुछ दिनों बाद उनकी गृहसे विका बाजार से एक बड़ी मछली खरीद कर घर लायी । वह मछली अपने आकार की अपेक्षा वजन में बहुत भारी थी । जब दासी ने मछली के टुकड़े किये तो उसमें से रुपयों से भरी थैली निकली । लोभवश दासी उसी छिपाने लगी तो घर की एक बूढ़ी स्त्री ने देख लिया और थैली को लेने के लिए झपटी किन्तु दासी ने उसे धक्का देकर गिरा दिया और वह वृद्धा मर गयी । उसी समय वे दोनों भाई घर में प्रविष्ट हुए और उस थैली को देखते ही सारा मामला समझ गये । उन्होंने उस रुपयों भरी थैली को दासी को सौंप कर उसे घर से निकाल दिया और बोले- 'अत्थो अणत्थिजुओ' अर्थात् अर्थ ही अनर्थ का मूल है (अर्थः अनर्थयुतः) । धन ही पाप का कारण है ।

हरिभद्रसूरि की उत्तरकालिक प्राकृत कथाएँ

णिव्वाण लीलावई कहा (निर्वाणलीलावतीकथा)

हरिभद्रसूरि की उत्तरकालिक प्राकृतकथाओं में यह महत्वपूर्ण कथा प्रथम स्थानीय है ।

राजगृह नगरी में सिंहराज नामक राजा अपनी रानी लीलावती के साथ शासन करता था। राजा का मित्र जिनदत्त नामक श्रावक था। उसके सम्पर्क से राजा जैन धर्म में श्रद्धालु हो गया। एक बार जिनदत के गुरु समरसेन मुनि राज गुरु नगरी में आए राजा और रानी जिनदत्त के साथ मुनीन्द्र श्रीसमरसेन का दर्शन करने गए। राजगृह नगरी में आये। राजा ने उनका अप्रतिम सौंदर्य देखकर और अगाध पांडित्य का अनुभव करके उनका वृतांत जानने की इच्छा निवेदन की।

मुनिराज ने महाराज के पारितोषार्थ अपना वृत्तान्त सुनाया – 'वत्सदेश की राजधानी कौशाम्वी में विजयसेन नाम का राजा राज्य करता था। उसका मंत्री जयशासन, पुरोहितसूर, श्रेष्ठी पुरन्दर और सार्थवाह धन था। इन पांचों में बहुत धनिष्ट मैत्री थी। किसी दिन उस नगरी में सुधर्म नामक एक आचार्य पधारे। इन पांचों ने जाकर आचार्य के दर्शन किए और उपदेश सुना। आचार्य ने पांच पापों का फल पाने वाले पुरुषों की कथा सुनाई। हिंसा और क्रोध का फल पाने वाले राजपुत्र रामदेव का वृत्तान्त मान और असत्य का फल पाने वाले राजपुत्र सुलक्षण का वृत्तान्त, कपट और चोरी का फल पाने वाले वणिकपुत्र वसुदेव का वृतान्त, कुशील और मोह का फल पाने वाले राजकुमार वज्रसिंह और लोभ एवं परिग्रह का फल भोगने वाले राजकुमार कनकरत का वृत्तान्त सुनाया। इस कथामय धर्मोपदेश को सुनकर वे पांचों मित्र विरक्त होकर सुधर्मस्वामी से दीक्षित हो गये। उन्होंने और तपस्या की और आयुक्षय होने पर सौधर्म स्वर्ग में देव हुए और पुनः वहाँ से च्युत होकर भरत क्षेत्र में पैदा हुए।

मन्त्री जयशासन का जीव मलयदेश के कुशावर्तपुर में राजा जयशेखर का पुत्र हुआ। इसका नाम समरसेन पड़ा। यह मृगयाप्रेमी था। मृगयासक्त होकर सदैव जीवहिंसा में लगा रहता था। पुरोहित सूर का जीव जो अभी देवयोनि में विद्यमान था, आकर उसे सम्बोधित करता था। फिर यह प्रतिबुद्ध हुआ और उसने विरक्त होकर आचार्य धर्मनन्दन से दीक्षा ग्रहण करली।

कथा का मूलनायक सिंहराज, कौशाम्बी के राजा विजयसेन का जीव है और उसकी रानी लीलावती वणिक् पुत्र वसुदेव का जीव है। पूर्वभव की मैत्री को लक्ष्यकर मन्त्री जयशासन का जीव, जो विरक्त होकर समरसेनसूरी के रूप में दीक्षित है, राजा और रानी को सम्बोधित करने आता है। सूरी के उपदेश से प्रतिबुद्ध होकर, सिंहराज राजा और लीलावती रानी - दोनों ही दीक्षा धारण करके तपश्चरण करते हैं और निर्वाणलाभ करते हैं।

'णिव्वाण सीसावईकहा' जिनेश्वर सूरी की रचना है जिन्हें उन्होंने आशापल्ली (वर्तमान में अहमदावाद ?) नामक स्थान में वि. सं.1082 से 1095 के बीच लिखा था। यह कथा ग्रन्थ प्राकृतपद्यों (गाहा) में लिखा गया था किन्तु मूलग्रन्थ अभी तक अनुपलब्ध है किन्तु जिनरत्नसूरी के द्वारा संस्कृत में किया गया इसका संक्षिप्त रूपान्तर प्राप्त है। इस ग्रन्थ में दुर्वृत्तियों का कुफल जन्म – जन्मान्तरों तक भोगना पड़ता है - यह रोचक शैली में वर्णित है।

मध्यदेश के निवासी कृष्ण नामक ब्राह्मण के दो पुत्र श्रीधर और श्रीपति थे। ये दोनों दीक्षा धारण कर क्रमशः जिनेश्वरसूरी और बुद्धिसागर सूरी के नाम से विख्यात हुए। जिनेश्वरसूरी ने गुजरात के अणहिलवाड के राजा दुर्लभराज के सभापण्डितों से शास्त्रार्थ करके उन्हें पराजित किया तथा वहाँ वसतिवास की स्थापना की थी। जिनेश्वरसूरीने निर्वाणलीलावती कथा के अतिरिक्त 'कथाकोषप्रकरण' नामक एक अन्य कथाग्रन्थ का भी निर्माण किया था। कथाकोषप्रकरण के अन्त में इन्होंने अपने गुरु वर्धमानसूरि का उल्लेख किया है।

'कथाकोषप्रकरण' में प्रायः चालीस कथाएँ दी गयी हैं। इसमें अधिकांश कथाएँ पौराणिक चरितों से सम्बद्ध है और कई पूर्व के कथाग्रन्थों में प्राप्त भी होती हैं, किन्तु कतिपयकथाएँ कल्पित (उत्पाद्य) भी हैं। कथाएँ प्राकृत गद्यमें निबद्ध हैं। प्रसंगवश प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश के पद्य भी प्रयुक्त हैं। इस ग्रंथ की एक कथा, 'सुन्दरी और राजकुमार तोसली' बहुचर्चित है। सागरदत्त के कुरूप पुत्र यशवर्धन के साथ सुन्दरी नामक कन्या का विवाह हुआ था। सुन्दरी वस्तुतः अनुपम सुन्दरी थी और अपने भाग्य को कोसा करती थी। दैवयोग से एकदिन राजकुमार तोसली से उसकी आँखें चार हो गयीं। तोसली के मुँह से निकला -

"अणुरुखगुणं अणुरुवजोव्वणं भाणुसं न जस्सत्थि ।
किं तेणजियं तेणंपि मामि णवरंमओ एसो ।।"

उत्तर में सुन्दरी भी बोल पड़ी – "परिमुंजिउन याजइलच्छि पत्तंपि पुण्णपरिहोणो ।
विक्कमरसा इ पुरिसा मुंजंति वरेसुलच्छीओ ।।"

फिर तो सुन्दरी तोसली की हो गयी और दोनों ने कहीं दूर अन्य नगर में जाकर विवाह कर लिया । नाणपंचमीकहा (ज्ञानपञ्चमीकथा) के लेखक महेश्वरसूरि है जो सज्जन उपाध्याय के शिष्य थे । इसका रचनाकाल 1109 वि. से पूर्व है । इस कथा ग्रन्थ में भविष्यदत्त का आख्यान आया है । इसके आश्रय से धनपाल ने अपभ्रंश में 'भविसयत्तकहा' नामक महाकाव्य की रचना की है ।

श्रुतपंचमी व्रत का माहात्म्य बतलाने के लिए नागपंचमीकहा में जयसेणकहा, नंदकहा,मद्धाकहा, वीरकहा, कमलाकहा, गुणाणुरागकहा, विमलकहा, धरणकहा, देवीकहा और भक्ति यत्त कहा - ये दश कथाएँ निबद्ध हैं । इस ग्रन्थ में नीतिपरक सूक्तियाँ समाविष्ट हैं । ये दो सूक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

'वयणं कज्जविहूणं धम्मविहूणं य साणुसं जम्मं ।
निरवच्चं च कलत्तं तिन्नि वि लोएण अग्धंति ।।'
' ने हो वंधणमूलं नेहो लज्जाइनासओ पादो ।
ने हो दोग्गइमूलं पइदियहं दुक्खओ ने हो ।।'

कहारयणकोष (कथारत्नकोष) के रचनाकार देवभद्रसूरि गुणचन्द्र हैं । यह वि. 1158 में भरूकच्छ (भडौच) में मुनिसुव्रत चैत्यालय मैं लिखा गया । इस ग्रन्थ में 50 कथाएँ संगृहीत हैं । सभी कथाएँ रोचक है । साहित्यिक महत्त्व की अपेक्षा इन कथाओं का धार्मिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व अधिक है । इसकी कुछ कथाएँ अनेकार्थक हैं ।

नम्मयासुंदरीकहा (नर्मदासुन्दरीकथा) का प्रणयन वि: 1187 में महेंद्रसूरिने किया है । यहाँ पद्यों की प्रधानता लिए हुए गद्यपद्यमयता हैं । इसमें महासती नर्मदासुन्दरी के सतीत्व का निरूपण किया गया है । कथातत्त्वों की अपेक्षा काव्यतत्त्वों की प्रधानता हैं । नर्मदासुन्दरी के सौन्दर्य वर्णन में पदावली और अलङ्कारों की छटा दर्शनीय है । यह कथा कृति चम्पू शैली में निबद्ध हैं । प्रदत्त सूक्तियों का अर्थगाम्भीर्य अद्वितीय है -

'नेहं विणा विवाहो आजम्मं कुणइ परिदाहं ।'

कुमारवालवडिबोह (कुमारपालप्रतिबोधः) की रचना सोमप्रभसुरि ने कुमारपाल की मृत्यु के ग्यारह वर्ष पश्चात् की (वि. 1241=1184. में) आचार्य हेमचन्द्र जैन के उपदेश से प्रभावित होकर चालुक्यवंशी राजा कुमारपाल ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया था । इस ग्रन्थ की कथाओं में वें शिक्षाएँ आयी हैं । जिन्हें समय-समय पर आचार्य हेमचन्द्रजी ने कुमारपाल को दी थी । चारित्रिक निष्ठा को जगाना इन कथाओं का प्रयोजन है । इसमें कुल 58 कथाएँ हैं जिनमें अजितसेन की पत्नी शीलावती की कथा सर्वोत्तम है ।

आख्यानमणिकोशः - नेमिचंद्रसूरि ने धर्म के विभिन्न अंगों को हृदयंगम करने के लिए 146 उपदेशप्रद लघुकथाएँ लिखकर इस में संग्रहीत की हैं ।

दिनदत्ताख्यान - इस सरस कथा ग्रन्थ के रचयिता आचार्य सुमतिसूर हैं । इसकी शिक्षा है । 'पेट भरो, पेटी नहीं' एक संवाद मनोरम है – विमलमतिः – 'किमरुथलीसु दुल्लहं / का वा भवणस भुसणि भोग्या कं कामइ सेलसुआ कं पियई जुवाणओ तुट्ढो ?" जिणदत्तः – 'कंता हरं ।' प्राकृत के परवर्ती अन्य कथा ग्रन्थों में सिरिसिरिवाल कहा, इयणसेहरनिवका, महिवालकहा, पाइयकहासंग्रहो प्रभृति कथा ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं ।

वस्तुतः प्राकृतकथासाहित्य का संसार बहुत विशाल और गहरा है ।।

।। इति शम् ।।

प्रॉफेसर डॉ. श्री मणिभाई प्रजापति विद्योत्तेजक व्याख्यानमाला -17

व्याख्यान-माला का प्रथम मुद्रित पुष्प

आयोजक

संस्कृत, पालि-प्राकृत एवं भारतीय विद्या विभाग

श्रीहेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण

वर्षः- 2019

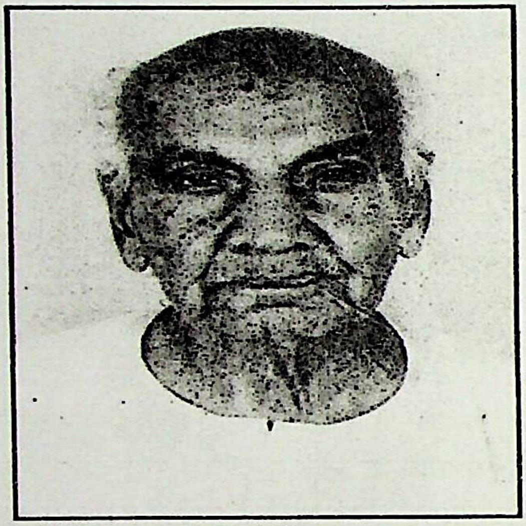

अभिज्ञानशाकुन्तल की देवनागरी वाचना के तीन रूपान्तरण -- नयी गवेषणा

वक्ताश्री – प्रॉ. वसन्तकुमार म. भट्ट,

शास्त्रचूडामणि, उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी

अखिल भारतीय श्रीहेमचन्द्राचार्य संस्कृत समारोह – 2019

(दिनाङ्कः- 12 से 14 जुलाई, 2019)

अभिज्ञानशाकुन्तलम् की देवनागरी वाचना के तीन रूपान्तरण – एक नयी गवेषणा ॥

वसन्तकुमार म. भट्ट

शास्त्रचूडामणि, संस्कृत एवं भारतीय विद्या विभाग,

हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण

भूमिकाः—(Review of the published literature) सर विलियम जोन्स ने ई.स.1789 में अभिज्ञानशकुन्तलम् नाटक का सब से पहला अंग्रेजी अनुवाद किया था । तथा नाट्यकार के रूप में कालिदास का कितना महत्त्व है यह युरोपिय प्रजा को समझाने के लिए कालिदास को "भारत का शेक्सपियर" कहा । इस अंग्रेजी अनुवाद का प्रकाशन करते समय उनको यह मालूम नहीं था कि इस नाटक की अन्यान्य वाचनाएं भी है । किन्तु वह पहला अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित होने के बाद इस नाटक का पाठ कितनी वाचनाओं में प्रवाहित हुआ है ? उसकी गवेषणा भी शूरु हुई । ई. स.1842 में ओटो बोटलिंग ने देवनागरी पाण्डुलिपियों के आधार पर इस नाटक की देवनागरी वाचना के (लघु)पाठ का सर्व प्रथम समीक्षित पाठ-सम्पदान प्रकाशित किया । तत्पश्चात् मोनियर विलियम्स ने 1876 में कुछ अन्य पाण्डुलिपियों के आधार पर देवनागरी वाचना का पुनः एक बार समीक्षित पाठ तैयार किया । इनके बाद डॉ. रिचार्ड पिशेल ने इस नाटक की बंगाली पाण्डुलिपियों के आधार पर, बंगाली वाचना का समीक्षित पाठसम्पादन तैयार किया । जिसका हार्वर्ड ओरिएन्टल सिरीझ (1889) में प्रकाशन हुआ है । इसमें इस नाटक का जो बंगाली पाठ था वह बृहदाकार वाला था । प्रॉफे. पी. एन. पाटणकर जी ने उसी वर्ष में (ई. स. 1889 में) कतिपय नवीन देवनागरी पाण्डुलिपियाँ का विनियोग करके, "देवनागरी वाचना का शुद्धतर समीक्षित पाठ" तैयार किया । जिसका द्वितीय संस्करण ई.स.1902 में निकला था । तीसरा महत्त्वपूर्ण प्रयास है प्रॉफे. कार्ल कैप्लर का । जिन्होंने ई.स.1909 में देवनागरी वाचना का चौथा समीक्षित पाठसम्पादन प्रकाशित किया । इसमें उन्होंने उच्चतर समीक्षा के मानदण्ड से परम्परागत पाठ की परीक्षा करते हुए "तथाहि", "कुतः" एवं "अपि च" जैसे निपातों के द्वारा प्रस्तुत हो रहे अनेक श्लोकों को निकाल दिये, जिसमें से एक "गान्धर्वेण विवाहेन0" वाला श्लोक भी था[1] । इसी तरह से कालान्तर में भी देवनागरी वाचना के अनेकानेक संस्करण प्रकाशित होते रहे हैं । साहित्य अकादेमी, दिल्ली के द्वारा महा-महोपाध्याय प्रॉफे. गौरीनाथ शास्त्री, कुलपति, वी. एच. यु., वाराणसी के सम्पादित किये गये देवनागरी वाचना का पाठ प्रकाशित हुआ । उसी सिलसिले में प्रॉफे. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी (वाराणसी) ने जब कालिदास ग्रन्थावली का सम्पादन ई.स. 1986 में किया तो उसमें भी इस नाटक का देवनागरी पाठ ही प्रकाशित किया । यहाँ उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त सभी पाठ-सम्पदाकों ने जिस देवनागरी वाचना के पाठ का प्रकाशन किया है, उनमें इस नाटक का केवल लघुपाठ ही प्रकाशित किया है । तथा इन सभी पाठसम्पादकों ने केवल दश अथवा बारह पाण्डुलिपियों का ही विनियोग करके अपने अपने तथाकथित समीक्षित पाठ तैयार किये हैं । (डॉ. गौरीनाथ शास्त्री एवं डॉ. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी जी जैसे अग्रगण्य अर्वाचीन विद्वानों ने तो प्रायः अपने पुरोगामी सम्पादकों के मुद्रित संस्करणों का ही प्राधान्येन[2] विनियोग किया है ।) मतलब कि इन सभी विद्वानों के पाठसम्पादनों में से हम यह नहीं जान पाते हैं कि देवनागरी वाचना का प्राचीनतम पाठ कैसा है, और वह पाठ क्रमशः कितने स्वरूपों में आविष्कृत किया गया है, अथवा लघुपाठ कब आकारित हुआ ? । क्योंकि ऐसा लगता है कि इस नाटक की सेंकडो देवनागरी पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध होते हुए भी, किसी भी विद्वान् ने दश-पँदरह से अधिक पाण्डुलिपियाँ देखी ही नहीं है । यद्यपि राष्ट्रिय पाण्डुलिपि मीशन, दिल्ली ने पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण एकत्र किया है एवं न्यू केटलोगस केटलोगरम्, मद्रास (ई.स.1965) में भी पाण्डुलिपियों की जानकारियाँ उपलब्ध थी । परन्तु, अभिज्ञानशाकुन्तल की देवनागरी वाचना का सही समीक्षित पाठसम्पादन तैयार करने के लिए किसी भी विद्वान् ने अद्यावधि इन जानकारियों का विनियोग नहीं किया है ॥

[1]

---

[1] Kalidasa's S'akuntala, (KÜRZERE Textform), Ed. Carl Cappeller, Leipzing, 1909

[2] श्रीरेवाप्रसाद जी ने कालिदास ग्रन्थावली (1986) में "भू.मा." (=भूयसी मातृका) संकेत से ऐसा निर्देश दिया है कि उन्होंने बहुत पाण्डुलिपियों का अवलोकन किया है । यद्यपि उनके निवेदन में हमें कोई शंका नहीं हैं । किन्तु उन्होंने किन किन ग्रन्थभण्डार की और किस क्रमांक वाली पाण्डुलिपियाँ देखी हैं ? तथा इन पाण्डुलिपियों में प्राप्त होने वाले पाठान्तर क्या क्या है ? इत्यादि का कोई प्रकट विवरण नहीं दिया है ।

अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रचलित पाठ की समस्या:- (Identification of the problem – 1) ई.स.1842 से शूरु करके ई.स.1986 तक, इस नाटक की देवनागरी वाचना के अनेकानेक तथाकथित समीक्षित पाठ-सम्पादन प्रकाशित होते रहे हैं। परन्तु उनमें चार तरह की मर्यादाएँ प्रविष्ट हुई हैः-

(क) उनमें कहीं पर समानता नहीं है ।

(ख) मोनियर विलियम्स, प्रॉफे. पी. एन. पाटणकर, श्रीरेवाप्रसाद जी आदि के सम्पादनों में, स्पष्टतया बंगाली-काश्मीरी-आदि वाचनाओं में प्रचलित हुए पाठान्तरों का भी स्वीकार किया गया है । उनको हम कथमपि "समीक्षित पाठसम्पादन" नहीं कह सकते हैं । इन सब को तो संदोहन पद्धति / मधुकर वृत्ति से (इकलेक्टीक प्रिन्सीपल पर) तैयार किया गया सामान्य संस्करण ही कहना उचित है । तथा

(ग) पूर्वोक्त सभी विद्वानों ने जो भी दश-पंदरह पाण्डुलिपियाँ मिल गई उनके आधार पर, अपना अपना पाठसम्पादन तैयार कर लिया है । एवञ्च, इन अल्पसंख्यक पाण्डुलिपियों के आधार पर, उन्होंने सीधे ही कवि-प्रणीत मौलिक पाठ को निर्धारित करने का साहस किया है ।

(घ) किसी विद्वान् के मन में "इन पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ पाठ किसी नटमण्डली ने अल्पसमय में इस नाटक को रंगमंच पर खेलने के लिए बनाया हुआ (रंगावृत्ति का) पाठ हो सकता है या नहीं?" ऐसी आशंका भी पैदा नहीं हुई[3] !

इन चार कारणों से, पुरोगामी विद्वानों ने हमारे सामने जो भी तथाकथित समीक्षित पाठ रखा है वह परस्पर में विसंवादी है, और प्रत्येक पाठ आन्तर-विरोध से भरा है । तथा देवनागरी पाण्डुलिपियों का केवल संक्षिप्ततर पाठ ही उन्होंने सम्पादित किया है । इस संक्षिप्त पाठ के अलावा किसी दूसरे बृहत्पाठ से वे अवगत ही नहीं थे[4] । इस हकीकत को एक निदर्श से समझने के लिए इस नाटक के केवल तीसरे अंक की श्लोकावली का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहिए ।

तद्यथा –

श्लोक का क्रम एवं उनके प्रतीक	ओटो-बोटलिंग 1842	मोनि. विलियम्स 1876	पी.एन. पाटण-कर 1889	कार्ल कैप्लर 1909	शारदा रंजन राय 1908			रेवा प्रसाद द्विवेदी 1986	
1 का कथा वाणसन्धाने0	1	1	1	1	1			1	
2 जाने तपसो वीर्यम्0	2	2	2	2	2			2	
3 तव कुसुमशरत्वम् शीत0	3	3	3	4	3			3	

[3] किसी भी वाचना के किसी भी पाठसम्पादक ने इस नाटक का उपलब्ध हो रहा पाठ रंगावृत्ति का हो सकता है या नहीं ? इस विषय में विस्तार से या दो-चार वाक्यों में भी परामर्श किया हो ऐसा मेरी जानकारी में नहीं है । इस दिशा में मैं ने अग्रेसर होकर, "अभिज्ञानशकुन्तला-नाटकस्य पञ्च रङ्गावृत्तयः" नामक एक विशाल-काय ग्रन्थ तैयार किया है, जो राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली में प्रकाशन के लिए स्वीकृत हुआ है ।

[4] यद्यपि डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल ने ई. स.1980 में देवनागरी पाठ के तीन स्वरूप का निर्देश किया था, लेकिन वे भी इस वाचना के बृहत्पाठ से अवगत नहीं थे । क्योंकि उनके पास भी मैंने एकत्र की पाण्डुलिपियाँ नहीं थी । उन्होंने 1. संमिश्रित देवनागरी, 2. संक्षिप्त देवनागरी एवं 3. अतिसंक्षिप्त देवनागरी पाठ ऐसे प्रकारों का नाम दिया है । इस निरूपण के लिए द्रष्टव्य है उनका (वंगाली वाचनानुसारी) अभिज्ञानशकुन्तलम् ।, जो संस्कृत कॉलेज, कोलकाता से प्रकाशित हुआ है । उस ग्रन्थ की प्रस्तावना में वहुत विस्तार से इस नाटक की पाठालोचना की गई है । एवं अलंकारशास्त्र के ग्रन्थों में प्राप्त हो रहे अभिज्ञानशकुन्तल के उद्धरणों के आधार पर उन्होंने वंगाली वाचना के पाठ को ही मौलिक पाठ मान लेने की गुजारीश की है ।।

4 अद्यापि नूनं हरकोप0	0	4	4	3	0			0	
5 अनिशमपि मकरकेतो0	0	5	5	0	4			4	
6 वृथैव संकल्पतशतैर्0	0	6	0	0	0			0	
7 सम्मीलन्ति न तावद्वन्ध0	0	7	0	0	5			5	
8 शक्यमरविन्दसुरभि0	4	8	6	5	6			6	
9 अभ्युन्नता पुरस्तादाव0	5	9	7	6	7			7	
10 स्तनन्यस्तोशीरम्0	6	10	8	7	8			8	
11 क्षामक्षामकपोलमान0	7	11	9	8	9			9	
12 पृष्टा जनेन समदुःखेन0	8	12	10	9	10			10	
13 स्मर एव तापहेतु0	9	13	11	10	11			11	
14 इदमशिशिरै0	10	14	12	11	12			12	
15 अयं स ते तिष्ठति संग0	11	15	13	12	13			13	
16 उन्नमितैकभ्रूलतम्0	12	16	14	13	14			14	
17 तुज्झ ण आणे हिअअं0	13	17	15	14	15			15	
18 तपति तनुगात्रि0	14	18	16	15	16			16	
19 संदष्टकुसुम0	15	19	17	16	17			17	
20 इदमनन्यपरायणम्0	16	20	18	17	18			18	
21 परिग्रहवहुत्वेपि द्वे 0	17	21	19	18	19			19	
22 किं शीतलैः क्लमवि0	18	22	20	19	20			20	
23 उत्सृज्य कुसुमशयनं0	19	23	21	20	21			21	
24 गान्धर्वेण विवाहेन0	20	24	22	0	22			22	
25 अपरिक्षतकोमलस्य0	21	25	23	21	23			23	
26 मुहुरंगुलिसंवृताधरो0	22	26	24	22	24			24	
27 तस्याः पुष्पमयी 0	23	27	25	23	25			25	
28 सायंतने सवनकर्म0	**24**	**28**	**26**	**24**	**26**			**26**	

यहाँ परीक्षण करने से, सर्व प्रथम दो-तीन बिन्दु ध्यान में आ रहे हैं। जैसे कि, 1. तृतीयांक के पाठ में स्वीकार्य एवं अस्वीकार्य बने श्लोकों की संख्या में समानता नहीं है। 2. इन स्वीकार्य-अस्वीकार्य श्लोकों में विवादास्पद वने वे श्लोक हैं, जो प्रथम दृश्य के आरम्भ में ही आये हुए हैं। 3. इन सभी सम्पादनों में इस नाटक का केवल लघुपाठ ही दिखाई रहा है। ऐसा क्यूं ? इस प्रश्न का वस्तुनिष्ठ एवं तर्कसिद्ध समाधान तब ही मिलेगा कि जब हम प्रस्तुत अभ्यास के लिए प्राप्त की गई 75 देवनागरी पाण्डुलिपियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करेंगे। जिससे हम जान पायेंगे कि इस देवनागरी वाचना के अद्यावधि अज्ञात रहे प्राचीनतम बृहत्पाठ से आरम्भ करके, उसी पाठ का संक्षेपीकरण होते होते क्रमशः अनेकविध लघुपाठ आविष्कृत हुए हैं। तथा वर्तमान में प्रचलित बना संक्षिप्ततर (24 श्लोकोंवाला) लघुपाठ तो संक्षेपीकरण के अन्तिम चरण में आकारित हुआ पाठ है ।।

[2]

देवनागरी वाचना के लघुपाठ में क्षतियाँ एवं विसंगतियाँ :- (Identification of the problem – 2) करीब सो-सवासो वर्षों से देवनागरी वाचना का जो पाठ (= लघुपाठ) पठन-पाठन में आरूढ हो गया है उसमें बहुविध क्षतियाँ एवं विसंगतियाँ विद्यमान है। किन्तु साहित्यरसिकों ने उनको "पश्यन्नपि न पश्यति" की तरह, पहचानी ही नहीं हैं। अथवा किसी विद्वान् ने यदि उनमें से एक-दो क्षतियाँ को पहचानी भी होगी, तो गजनिमीलिका-न्याय से उनकी अनदेखी ही की होगी। अतः, इस नाटक की प्राप्य पाण्डुलिपियों का पहले व्यापक सर्वेक्षण करना चाहिए। एवं यथासम्भव कुछ अधिक पाण्डुलिपियों को एकत्र करके उनके आधार पर एक नया समीक्षित पाठसम्पादन करना चाहिए। किन्तु इस दिशा में अग्रेसारित होने से पहले, प्रचलित देवनागरी पाठ में बहुविध क्षतियाँ एवं विसंगतियाँ विद्यमान है ऐसा जो आरोप लगाया गया है, उसका समर्थन करना अतीव आवश्यक है, जिसके लिए आन्तरिक / कृतिनिष्ठ प्रमाणों का निरूपण किया जाता है :---

इस नाटक की देवनागरी वाचना के (उन्नीसवीं शती के) आरम्भिक संस्करणों में इस नाट्य-कृति का शीर्षक "अभिज्ञानशकुन्तलम्" रखा गया है। (जैसे कि, ओटो बोह्तलिंग, मोनियर विलियम्स, एम. आर. काळे, कार्ल कैप्लर, पी. एन पाटणकर, शारदा रंजन राय, गौरीनाथ शास्त्री ने इस शीर्षक को माना है।) किन्तु निर्णय सागर प्रेस, मुंबई की आवृत्ति में एवं पं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी जी आदि के द्वारा "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" ऐसा शीर्षक दिया गया है। कहने का तात्पर्य यही है कि इस नाट्यकृति के शीर्षक से ही विवादास्पद परिस्थिति का आरम्भ होता है। इसके साथ, निम्नोक्त संदेहास्पद एवं विवादास्पद स्थानों से हम पहले अवगत होंगे :--

(क) भरत मुनि ने संस्कृत नाटकों में स्त्री-पात्र, परिजन वर्ग एवं विदूषक के लिए शौरसेनी प्रकार की प्राकृत भाषा का विधान किया है। किन्तु कालिदास के इस नाटक की देवनागरी वाचना के पाठ में सर्वत्र महाराष्ट्री प्राकृत भाषा का विनियोग हुआ दिखता है। (कालिदास के समय में, यानि प्रथम शती में तो इस महाराष्ट्री प्राकृत का आविर्भाव भी नहीं हुआ था।) मतलब की देवनागरी वाचना के इस अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की भाषा का कलेवर भी परवर्ती काल का है ऐसा स्वतः सिद्ध होता है।

(ख) इस नाटक में अनेक स्थान पर (आर्या छन्द में निबद्ध) प्राकृत गाथाओं का प्रयोग किया गया है। किन्तु उनमें पिंगलसूत्रोक्त (प्राचीन काल के) आर्या छन्द का लक्षण पूर्णतया घटित नहीं होता है।

(ग) प्रथमांक में जो भ्रमर-बाधा प्रसंग आता है, उसमें "चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं ...... वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती ।।" इस श्लोक का अवतार प्रकाशित संस्करणों में "सस्पृहम्" जैसी रंगसूचना से किया जाता है। जो नितान्त अनुचित है। क्योंकि इस श्लोक की अन्तिम पङ्क्ति देखते ही समझ में आता है कि नायक दुष्यन्त शकुन्तला के मुख पर मंडरा रहे भ्रमर के प्रति ईर्ष्या भाव प्रदर्शित कर रहा है। उस भ्रमर को वह स्पृहा के साथ देख ही नहीं रहा है। अर्थात्, यहाँ प्रस्तुत परिस्थिति के साथ रंगसूचना सुसंगत नहीं है।

(घ) डॉ. एस. के. बेलवालकर जी ने बताया है कि- तीसरे अंक के कथाप्रवाह में जो समय-सूचक रंगसूचनाएँ दी गई हैं वे सुसंगत नहीं हैं। जैसे कि- नायक एवं नायिका को एकान्त प्रदान करने के लिए दोनों सहेलियाँ आश्रम के मृग-पोतक को लेकर चली जाती है। रंगमंच पर, मध्याह्न के समय में दुष्यन्त और शकुन्तला एकेले हैं। उन दोनों के बीच में जो वातचीत

होती है, वह केवल दश उक्तियाँ तक सीमित है। उतनी क्षणों में ही रात्रि-काल का आगमन हो गया है ऐसा नेपथ्योक्ति से कहा जाता हैः-

1. **शकुन्तला** – कहं गदाओ एव्व। (कथं गते एव।)
2. **राजा** – अलमावेगेन। नन्वयमाराधयिता जनस्तव समीपे वर्तते।
   किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्, संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः।
   अङ्के निधाय करभोरु ! यथासुखं ते, संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ॥ (3-18)
3. **शकुन्तला** – ण माणणीएसु अत्ताणं अवराहइस्सं। (न माननीयेषु आत्मानमपराधयिष्यामि।)
   (*उत्थाय गन्तम् इच्छति।*)
4. **राजा** – सुन्दरि ! अनिर्वाणो दिवसः। इयं च ते शरीरावस्था,
   उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणम्।
   कथमातपे गमिष्यति परिबाधा पेलवैरङ्गैः ॥ (3-19) (*इति बलादेनां निवर्तयति*)
5. **शकुन्तला** – पोरव, रक्ख अविणअं। मअणसंतत्तावि ण हु अत्तणो पहवामि। (पौरव, रक्ष अविनयम्। मदनसंतप्तापि न खलु आत्मनः प्रभवामि।)
6. **राजा** – भीरु, अलं गुरुजनभयेन। दृष्ट्वा ते विदितधर्मा तत्रभवान् न दोषं ग्रहिष्यति कुलपतिः
   अपि च,
   गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः।
   श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः ॥ (3-20)
7. **शकुन्तला** – मुंच दाव मं। भूओ वि सहीअणं अणुमाणइस्सं। (मुञ्च तावन्माम्, भूयोऽपि सखीजनमनुमानयिष्ये।)
8. **राजा** – भवतु, मोक्ष्यामि।
9. **शकुन्तला** – कदा। (कदा।)
10. **राजा** – अपरिक्षतकोमलस्य यावत् कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन।
    अधरस्य पिपासता मया ते सदयं सुन्दरि, गृह्यते रसोऽस्य ॥ (3-21)
    (*इति मुखमस्याः समुन्नमयितुमिच्छति। शकुन्तला परिहरति नाट्येन।*)
11. **(नेपथ्ये)** चक्कवाकवहुए, आमंतिहि सहअरं। उवट्ठिआ रअणी। (चक्रवाकवधूके, आमन्त्रयस्व सहचरम्, उपस्थिता रजनी।)

यहाँ पर स्पष्टतया चौथी उक्ति में राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला को कहा है कि इतनी कडी धूप में तुम कुसुमशयन को छोड कर, कैसे लतावलय से बाहर निकलोगी ?। अर्थात् अभी तो मध्याह्न का समय चल रहा है। तत्पश्चात् ग्यारहवी नेपथ्य-उक्ति में कहा जाता है कि रात्रि आ गई, हे चक्रवाकवधू तुम अपने सहचर से बिदाई ले लो ॥

इस तरह से प्रणय-प्रसंग का अतिसंक्षिप्त काल में सिमट लिया जाना ऐसा सूचित करता है कि इस प्रसंग के मूल पाठ्यांश में भारी कटौती हुई होगी। मूल पाठ्यांश ऐसा रहा होगा कि जिसमें मध्याह्न के बाद सायंकाल पर्यन्त के भी कुछ संवाद रहे हो, एवं तत्पश्चात् ही रात्रि का आगमन होने की सूचना दी गई होगी ॥

(ङ) इसी तीसरे अंक के उपान्त्य श्लोक का सूक्ष्मेक्षिका से परीक्षण करने की आवश्यकता है। आश्रम-माता गौतमी शकुन्तला के शरीरदाह को मिटाने के लिए यज्ञशाला का शान्त्युदक लेकर, रंगमंच पर आती हैं। तथा शकुन्तला को अपने साथ लेकर उटज की ओर चली जाती है। तब भोग-वंचित दुष्यन्त, जो विटपान्तरित होकर खडा था, वह अब रंगमंच पर आ कर निम्नोक्त श्लोक में अफसोस व्यक्त करने लगता हैः-

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं
क्लान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः।
हस्ताद् भ्रष्टमिदं बीसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि ॥ (3-23)

इस श्लोक के अधो रेखाङ्कित शब्दों से दुष्यन्त ने शकुन्तला की याद दिलाने वाली तीन चीजों का परिगणन करवाया है। जिनको सुन कर तुरंत प्रेक्षकों को स्मरण आयेगा कि इस अंक के आरम्भ में ही कहा गया है कि "एषा मे मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरणं शिलापट्टम् अधिशयाना सखीभ्याम् अन्वास्यते।" यानि रंगमंच पर कुसुम-शय्या का होना यथार्थ है। उसी

तरह से प्रेक्षकों को यह भी याद आयेगा कि प्रियंवदा के अनुरोध पर शकुन्तला ने "तव न जाने हृदयम्0" शब्दों वाला मदनलेख नलिनीपत्र पर उत्कीर्ण किया था। तो उसका भी रंगमंच पर होना उचित है। किन्तु दुष्यन्त ने जो तीसरी चीज का उल्लेख किया है कि शकुन्तला के हाथ में से गिरा बीसाभरण भी रंगमंच पर अभी भी मौजुद है, जिसको वहाँ छोड कर, वह लतावलय से वाहर निकल ने में समर्थ नहीं है। अव इस तीसरी चीज से जुडा हो ऐसे कोई प्रसंग का दृश्य तो (इस देवनागरी वाचना के लघुपाठ में) निरूपित हुआ ही नहीं है। इस बीसाभरण से जुडा कोई प्रसंग मूल में न हो ऐसा तो हो ही नहीं सकता। क्योंकि नाटक मात्र का यह वैश्विक नियम है कि जिस चीज का अंक में (कथाप्रवाह) में एक वार भी निर्देश किया जाता है तो उससे जुडा कोई प्रसंग होना ही चाहिए। नाटक एक समयवद्ध कला होने के कारण उसमें एक भी फिजुल चीज का निर्देश नाट्यसमीक्षकों के द्वारा असह्य माना गया है। अतः इस दृष्टि से सोचने से सूचित होता है कि शकुन्तला के हाथ से भ्रष्ट हुए इस वीसाभरण (मृणालवलय) के साथ जुडा कोई प्रसंग पहले था, लेकिन देवनागरी वाचना के इस लघुपाठ में से वह गायव हो (यानि हटाया) गया है।

(च) तीसरे अंक के आरम्भ में प्रेक्षकों को कहा जाता है कि मदनसंतप्ता शकुन्तला एक शिलातल पर, पुष्पों की शय्या में लेटी हुई अवस्था में प्रविष्ट होती है। उसके आसपास में उनकी दो सहेलियाँ वैठी है और वे उसको नलिनीदल से पवन झल रही है। लेकिन शकुन्तला को कुछ सुध-वुध है नहीं। जव उसे पूछा जाता है कि क्या तुम्हें यह नलिनीपत्र का वात सुख पहुँचाता है ?, तब वह सामने प्रश्न करती है कि "क्या सहेलियाँ, मुझे पवन झल रही है ?"। यानि वह अपने आसपास कौन है, एवं क्या हो रहा है इत्यादि कुछ जानती ही नहीं है। इस गम्भीर हालात को देख कर, प्रियंवदा ने कहा है कि "अक्षमा इयम् कालहरणस्य।" अतः अब देखना होगा कि पुष्पों पर लेटी शकुन्तला कव वैठती है, कव खडी होती है और कव चलती है ? । देवनागरी वाचना का जो पाठ प्रचलन में आ गया है उसमें जव हम देखते है तो मालूम होता है कि सव से पहले अनसूया ने शकुन्तला के संताप का क्या कारण होगा ? वह जानने के लिए, उसको ही पूछना चाहिए ऐसा सुझाव दिया, तब रंगसूचना दी गई है कि 1. शकुन्तला "*पूर्वार्धेन शयनाद् उत्थाय*" वोलती है (:- *हला किं वत्तुकामासि*)। उसके वाद, 2. मदनलेख लिखते समय शकुन्तला को "*उपविष्टां चिन्तयति*" जैसी रंगसूचना से लेटी हुई अवस्था में से, शिलातल पर विठाई गई है। तत्पश्चात् जब उसके मदनलेख के शब्दों को सुनते ही, नायक दुष्यन्त सहसा रंगमंच पर प्रकट होता है तव अनसूया उसका वाचिक स्वागत करती है। और उसको शकुन्तला के साथ में, (जिस शिलातल पर शकुन्तला वैठी है उसी शिलातल पर), बैठने की विज्ञप्ति करती है। तव दो रंगसूचनाएं ध्यानास्पद है:- 3. *राजा उपविशति*। 4. *शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति*। इन दोनों रंगसूचनाओं के अनुसार अब नायक शिलातल पर बैठेगा और शकुन्तला लज्जापूर्ण भावों के साथ उसी के पास में खडी होगी। तत्पश्चात् नायक-नायिका को एकान्त मिलन का अवकाश देने के लिए दोनों सहेलियाँ वहाँ से चली जाती है। अब रंगमंच पर नायक एवं नायिका दो ही उपस्थित है, तव दुष्यन्त ने शकुन्तला के पद्मताम्रवर्णी चरणों को अपनी गोदी में लेकर, उनका संवाहन करने का प्रस्ताव रखा। तव शकुन्तला ने कहा कि माननीय व्यक्ति से ऐसी सेवा लेकर, मैं अपने आप को अपराध में डालना नहीं चाहती हूँ। यहाँ 5. रंगसूचना दी जाती है कि- "*इति उत्थाय गन्तुम् इच्छति*"। - यहाँ जिस क्रम में इन पाँच रंगसूचनाएं रखी गई है वे परस्पर में सुसंगत नहीं है। क्योंकि राजा ने जव अनसूया की विज्ञप्ति से शिलातल पर आसन ग्रहण किया, तव तो शकुन्तला के लिए (चौथी रंगसूचना से) कहा गया है कि वह लज्जा के साथ खडी हो जाती है। अब ऐसी खडी हुई नायिका को, कथाप्रवाह आगे वढते ही, दुष्यन्त कैसे कहेगा कि तुम अनुमति दो तो मैं आपके पाँव मेरी गोदी में रख कर, उनका संवाहन करने को तैयार हूँ। एवमेव, खडी हो चुकी नायिका के लिए जो पाँचवी रंगसूचना दी गई है कि *वह खडी होकर, जाने की इच्छा कर रही है*। तो वह सर्वथा विसंगति-

युक्त है। इससे भी सिद्ध होता है कि देवनागरी वाचना के प्रचलित (लघु)पाठ में, मंचन के सन्दर्भ में दी गई रंगसूचनाएँ परस्पर विरुद्ध एवं विसंगति से भरी पडी है, जो कथमपि मौलिक दिखती नहीं है ।।

कवि कालिदास ने तृतीयांक में मदनसंतप्ता शकुन्तला की पुष्पों की शय्या पर लेटी हुई अवस्था वाली जो दृश्य-योजना मूल में सोची है, उसका परामर्श किया जाय तो शकुन्तला को बहुत लम्बे समय तक रंगमंच पर लेटे ही रहना है। यानि कि मदनलेख लिखते समय एवं उसको पढ कर सहेलियों को सुनाते समय भी उसे लेटी ही रहना है। तथा राजा को जब उसके साथ में (अनसूया के द्वारा विज्ञप्ति करके) बिठाया जाता है तब भी उसको लेटे ही रहना है। तत्पश्चात् दोनों सहेलियों की रंग से विदाई हो जाने के बाद, राजा जब निम्नोक्त श्लोक से उसके पाद-संवाहन का प्रस्ताव रखे तब ही उसको पुष्पशय्या से उठना है। कवि के द्वारा मूल में सोची गई मंचनलक्ष्यी योजना समझने के लिए यह श्लोक ही सुस्पष्ट दिशासूचक आन्तरिक प्रमाण है :--

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्,
संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः ।
अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते,
संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ[5] ।। (3-18)

अर्थात् देवनागरी वाचना के प्रकाशित संस्करणों में इस नाटक का जो पाठ पढा जा रहा है उसमें मंचनलक्ष्यी रंगसूचनाओं में पारस्परिक विरोध एवं विसंगतियाँ विद्यमान है। अतः इस सुप्रचलित पाठ को हम कथमपि श्रद्धेय एवं ग्राह्य पाठ नहीं कह सकते है ।। ऐसे देवनागरी वाचना के प्रकाशित पाठ की दुर्दशा को दस्तावेजीय प्रमाणों के आधार पर समझने के लिए हस्तलिखित ग्रन्थ-भण्डारों में सुरक्षित शताधिक पाण्डुलिपियाँ एकत्र करके, समीक्षित पाठसम्पादन करने का अभिनव प्रयास करना चाहिए ।।

(छ) तृतीयांक के आरम्भ में कामयमानावस्थ दुष्यन्त मालिनी-नदी के तट पर शकुन्तला और उसकी सहेलियों को ढूँढता हुआ घुमता-फिरता है। मार्ग में स्वगत-उक्ति के रूप में वह बोलता है कि –

(मदनबाधां निरूप्य) भगवन् कुसुमायुध, त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्याम् अतिसन्धीयते कामि-जनसार्थः । कुतः,

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो-
र्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु ।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै-
स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि ।। (3-3)

(परिक्रम्य) क्व नु खलु संस्थिते कर्मणि ..... इत्यादि ।।

यहाँ पर, कालिदास की निरूपण-शैली को स्मरण-पट में लायेंगे तो समझ में आता है कि जिस कामदेव के वज्रसारीभूत बाणों को लेकर दुष्यन्त उसको कोसता है, वह सर्वथा तो उचित नहीं है। क्योंकि प्रेम-जन्य पीडा किसको पसंद नहीं आती है। प्रचलित देवनागरी पाठ (जिस पर राघव भट्ट ने टीका लिखी है, उस) में उपर्युक्त एकल श्लोक वाग्दोष से युक्त है। सामान्यतः कालिदास ऐसे वाग्दोषों से बचने के लिए, एक पक्ष को प्रस्तुत करके तुरन्त ही "अथवा" निपात से पक्षान्तर

---

[5] इसको स्पष्ट करते हुए टीकाकार राघव भट्ट ने लिखा है "करभोरु-पद्मताम्रौ इति पदाभ्यां चरणयोः संवाहन-योग्यत्वं ध्वनितम् । चरणावङ्के निधायेत्यनेन च स्वस्य संवाहनकौशलं ध्वनितम् । प्रका. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2006, (पृ. 107)

को प्रस्तुत करते ही है। जैसे कि, रघुवंश में कवि ने आरम्भ में तो बोल दिया कि "क्व सूर्यप्रभवो वंशः, क्व चाल्पविषया मतिः । तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् । प्रांशु लभ्ये फले लोभाद् उद्बाहुरिव वामनः ।। मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्यामि उपहास्यताम् ।" अब, इतना बोल देने के बाद तो कवि को रघुवंश के निर्माण-कर्म से विरत हो जाना चाहिए । लेकिन इस वाग्दोष से मुक्त होने के लिए कवि अनुगामी श्लोक में कहते हैं कि, "अथवा कृतवाग्-द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः । मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्यैवास्ति मे गतिः ।। इसी तरह से अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में भी अनेक स्थान पर कालिदास ने "अथवा" निपात के द्वारा, पक्षान्तर प्रस्तुत करते हुए,वाग्दोष को निर्मूल किया है। अतः "तव कुसुमशरत्वम्0" श्लोक के बाद, निम्नोक्त श्लोक का होना अनिवार्य लगता है:—

अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो रुजमावहन्नभिमतो मे ।
यदि मदिरायतननां ताम् अधिकृत्य प्रहरति ।। (3-4)

यानि जिस कामदेव ने वज्रसारीकृत बाण दुष्यन्त पर छोडे है, वे बाण यदि उस मदिरायतनयना शकुन्तला के सन्दर्भ में छोडे हैं तो, वह उसको अभिमत है, रुचिकर है । इस तरह से, पूर्वोक्त श्लोक के द्वारा दुष्यन्त के कथन में जो एकपक्षीयता का प्रविष्ट होती है, उसको निर्दुष्ट करने के लिए यह दूसरे श्लोक का होना आवश्यक है, और जो कवि की शैली के अनुरूप भी है । फिर भी राघव भट्ट ने अपने देवनागरी पाठ में से उसको हटा दिया है । एवमेव, परवर्ती काल के अनेक पाठसम्पादकों ने इस दूसरे श्लोक को अमान्य किया है । जिससे सिद्ध होता है कि वर्तमान में प्रचलित हुआ देवनागरी वाचना का पाठ संक्षिप्त किया गया है ।।

(ज) इस संक्षिप्त किये गये पाठ में कुत्रचित् प्रक्षिप्त श्लोक भी घुस गये हैं ऐसा भी दिख रहा है । जैसे कि,(1) अहो प्रवातसुभगोऽयमुद्देशः । शक्यमरविन्दसुरभि0 – इस श्लोक से पूर्व में, दुष्यन्त का जो वाक्य चल रहा है कि, "...मालिनीतीरे ससखीजना शकुन्तला गमयति । तत्रैव तावद् गच्छामि ।" ठीक उसके बाद, कतिपय पाण्डुलिपियों में (एवं पं. श्री रेवाप्रसाद जी आदि के प्रकाशित संस्करणों में भी) निम्नोक्त श्लोक प्राप्त होता है:- "*अनया बालपादपवीथ्या सुतनुरचिरंगतेति तर्कयामि । कुतः –*

संमीलन्ति न तावद् बन्धनकोशास्तयावचितपुष्पाः ।
क्षीरस्निग्धाश्चामी दृश्यन्ते किसलयच्छेदाः ।।"

इस श्लोक के द्वारा कहा गया है कि (=दुष्यन्त तर्क कर रहा है कि) वह सुतनु (शकुन्तला) इसी वृक्षवीथिका से चल कर अभी अभी गई होगी ऐसा लगता है । क्योंकि इन पौधों से पुष्पों का चयन किया गया है, तथा कुछ पौधे के पर्ण तोडने के कारण उनमें से निकल रहे दूध से उसके पर्ण स्निग्ध लग रहे हैं । यद्यपि रंगमंच पर मार्गान्तरण दिखाने के लिए, नायक के मुख से ऐसा श्लोक निकलना स्वाभाविक लगता है, तथापि यह श्लोक प्रक्षिप्त ही होगा । क्योंकि जिस शकुन्तला ने प्रथमांक में आश्रम के वृक्षों के लिए ऐसा कहा हो कि मैं केवल पितृ-आज्ञा से जलसिंचन करती हूँ ऐसा नहीं है । मुझे भी इन वनस्पतिओं पर अपने सहोदर जैसा प्रेम है । (*अस्ति ममापि एतेषु सोदरस्नेहः ।*) एवमेव, चतुर्थांक में, काश्यप मुनि ने भी शकुन्तला की पहचान देते कहा है कि आज वह शकुन्तला ससुराल जा रही है जो, "*पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलम्, युष्मास्वपीतेषु या, नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्0'* (4-9) अपने को स्वसुशोभन पसंद होते हुए भी, जिस शकुन्तला ने वनस्पतिओं से कभी भी एक पल्लव भी तोडा नहीं है । इन कृतिनिष्ठ अन्तःप्रमाण से सिद्ध होता है कि उपर्युक्त श्लोक प्रक्षिप्त ही है ।।

(2) किसी भी कृति में कौन सा श्लोक प्रक्षिप्त होगा कि नहीं ? उसकी तर्कनिष्ठ परीक्षा करना बहुत आवश्यक है । जैसे उपर्युकत उदाहरण में कृतिनिष्ठ वचनों में ही आन्तर विरोध आ रहा है ऐसा दिखाया है, वैसा ही दूसरा उदाहरण षष्ठांक के प्रथम दृश्य में भी पडा हैः- दो उद्यानपालिकाएँ वसन्त-ऋतु के आगमन पर चूतांकुर से कामदेवार्चन करती है । जिसमें द्वितीया उद्यानपालिका, जिसका नाम मधुकरिका है, वह कामदेव को उद्दिष्ट करके चूतांकुर फैंकती है । बस, उसी क्षण कञ्चुकी रंगमंच पर आकर इन दोनों को डाँटता है । और बताता है कि क्या आप जानती नहीं हो कि देव (दुष्यन्त) ने वसन्तोत्सव को निषिद्ध घोषित किया है । साथ में वह यह बात भी जोडता है कि वासन्तिक तरुओं ने और तदाश्रित पक्षिओं ने भी देव का शासन मान्य है । जिसके कारण –

चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः
संनद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत्कोरकावस्थया ।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूर्णार्धकृष्टं शरम् ।। (6-4)

अर्थात् दुष्यन्त की आज्ञा को स्वीकारते हुए आम्रवृक्षों पर मञ्जरी का उद्गम नहीं हुआ है और आम्रवृक्ष पर रहेने वाले पुंस्कोकिलों ने भी अपने गले से कुहू कुहू जैसी आवाझ रोक दी है । प्रकृत श्लोक में ऐसा जो वर्णन प्राप्त होता है उसको सुनते ही साहित्यरसिकों के चित्त में आनन्द छा जाता है । लेकिन इस सुन्दर पद्य के आगे पीछे रखे गये वाक्यों को पुनः ध्यान से देखने से आन्तर-विरोध सामने आ जाता है । यहाँ इस पद्य का अवतार होने से पहले तो कहा गया है कि- "*महुअरिए, चूदकलिअं देक्खिअ उम्मत्तिआ परहुदिआ होदि । (मधुकरिके, चूतकलिकां दृष्ट्वोन्मत्ता परभृतिका भवति ।*)" इसका मतलब है कि चूतकलिका (आम्रमञ्जरी) का प्रसव हो चूका है । एवमेव, मधुकरिका ने यह भी कहा है कि अरे ! परभृतिके, मेरा अवलम्बन ले लो, मैं कामदेवार्चन करती हूँ । उसके बाद वह "*त्वमसि मया चूताङ्कुर दत्तः कामाय गृहीतधनुषे0*" जैसी गाथा बोल कर कामदेव को एक चूताङ्कुर समर्पित भी करती है । यहाँ देवनागरी के पाठ में "*चूताङ्कुरं क्षिपति*" जैसी रंगसूचना भी दी गई है । इससे मालूम होता है कि चूतवृक्ष पर आम्रमञ्जरी का आगमन हो चूका था । अतः इतनी घटना घटित हो जाने के बाद, कञ्चुकी के मुख से उपर्युक्त रमणीय पद्य निकलना असमञ्जस सिद्ध होता है । दुष्यन्त की आज्ञा से निसर्ग में वसन्तागमन भी रुक गया है- इत्यादि कहना वह आन्तर विरोध से युक्त है । जिससे सिद्ध होता है कि यह रमणीय पद्य कालान्तर में प्रक्षिप्त किया गया है ।।

(झ) कवि कालिदास ने इस नाटक की प्रस्तावना में नटी के मुख से कहलाया है कि "णं अज्जमिस्सेहिं पढमं एव्व आणत्तं अहिण्णाणसाउंदलं णाम अपुव्वं णाडअं पओए अधिकरीअदु त्ति । (ननु आर्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तमभिज्ञानशाकुन्तलं नाम अपूर्वं नाटकं प्रयोगे अधिक्रियतामिति ।)" उनका यह नाटक अपूर्व है[6] । अर्थात् कालिदास ने अपने दो पुरोगामी नाटकों (मालविकाग्निमित्र एवं विक्रमोर्वशीय) से यह तीसरा नाटक अपूर्व है, भिन्न है । जिस तरह से पहले वाले दो नाटकों में पूर्वपरिणीता रानिओं (धारिणी-इरावती तथा काशीराजपुत्री औशिनरी) की ओर से राजा के नवीन प्रेम-प्रकरण में बाधाएँ डाली जाती हैं, उस तरह का संघर्ष इस अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में नहीं है । इस नाटक की यह एक अपूर्वता है । कालिदास के इस प्रतिज्ञा-वचन को यदि स्मरण-पट में रखेंगे तो, षष्ठांक के अन्त भाग में जब कहा जाता है कि अन्तःपुर

---

[6] इसी तरह से सूत्रधार के मुख से, कवि ने इस नाटक के लिए ("नवेन नाटकेनोपस्थातव्यम्" शब्दों से) "नवीन" विशेषण का प्रयोग किया है । तो उसका मर्म यह है कि मालविकाग्निमित्र एवं विक्रमोर्वशीय नाटक में जैसे राजा का नवीन प्रियतमा के साथ का प्रेम-प्रसंग पूर्णतया एवं बहुशः नर्मसचिवायत्त (=विदूषक की बुद्धि के अधीन) बताया है, वैसा इस अभिज्ञानशाकुन्तल में नहीं है । यहाँ तो शकुन्तला के प्रेम-प्रसंग में विदूषक को सर्वथा अनुपस्थित ही रखा गया है । आदि से लेकर अन्त तक विदूषक को शकुन्तला के सामने लाया ही नहीं गया है । यह इस नाटक की नवीनता है ।।

की व्याघ्री (रानी वसुमती) आ रही है, अतः शकुन्तला के चित्र को जल्दी से छिपा दो । यहाँ राजा दुष्यन्त ने रानी को "बहुमानगर्विता" कही है और विदूषक ने भी राजा को कहा है कि आप (दुष्यन्त) जब अन्तःपुर के इस कालकूट से मुक्त हो जाय तब मुझे मेघप्रतिछन्द प्रासाद से वापस बुला लेना । - इन सभी सन्दर्भों का मौलिक होना असम्भव है । क्योंकि यहाँ तो, पूर्वपरिणीता रानी की ओर से पैदा होने वाले संघर्ष की आवश्यकता ही नहीं है । इस तीसरे नाटक में तो कालिदास ने संघर्ष तत्त्व के रूप में दुर्वासा के शाप का विनियोग किया ही है, इस लिए दूसरे किसी घीसे-पीटे संघर्ष की आवश्यकता ही नहीं रहती है । यही शाप-योजना इस नाटक की अपूर्वता है । अतः इस अपूर्वता को हानि पहुँचाने वाले षष्ठांक के पूर्वोक्त सन्दर्भ प्रक्षिप्त ही सिद्ध होते हैं ।।

(ञ) द्वितीयांक के अन्त भाग में, राजमाताओं ने करभक को भेजा है । उसने दुष्यन्त को संदेश कहा है कि आगामिनि चतुर्थदिवसे प्रवृत्तपारणो मे उपवासो भविष्यति । तत्र दीर्घायुषावश्यं संभावनीया इति । इस पंक्ति में जिस व्रत का नामोल्लेख है वह है- प्रवृत्तपारणः । (आज से लेकर चौथे दिन जिस उपवास का पारणा शूरु होने वाला है) । यह पाठ अप्रतीतिकर है । क्योंकि प्रथमांक में कण्वाश्रम के मुनि ने आश्रम के मृग को नहीं मारने के लिए राजा को चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होने का आशीर्वाद दिया है । जो अभिनवगुप्त के मत से इस नाटक का लक्ष्य है । अतः इस पुत्रप्राप्ति रूप लक्ष्य के विविध सन्दर्भ नाटक के सभी अंकों में बिखरे हुए हम पाते हैं । केवल द्वितीय अंक ही ऐसा है कि जिसमें इस लक्ष्य की ओर तनिक भी अंगुलिनिर्देश किया हो ऐसा कोई स्थान नहीं मिलता है । (इस के स्थान में काश्मीरी-आदि अन्य वाचनाओं में इस व्रत का नाम पुत्रपिण्ड-पालन व्रत बताया गया है । इससे तात्पर्य यह निकलता है कि देवनागरी वाचना के अनेक पाठान्तर भी कृतिनिष्ठ आन्तरिक सम्भावनाओं से समर्थित नहीं होते हैं ।।

(ट) चतुर्थांक में पितृ-गृह से बिदाई लेकर ससुराल जा रही शकुन्तला अपने पिता कण्व से पूछती है कि – शकुन्तला – (पितरमाश्लिष्य) कहं दाणिं तादस्स अंकादो परिब्भट्ठा मलयतरून्मूलिआ चंदणलदा विअ देसंतरे जीविअं धारइस्सं । (कथमिदानीं तातस्याङ्कात् परिभ्रष्टा मलयतरून्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितं धारयिष्ये ।) यहाँ शकुन्तला ने अपने आपको "मलयपर्वत के तरुओं में से उन्मूलित की गई चन्दनलता" का उपमान दिया है । किन्तु यह उपमान भौगोलिक सत्य की दृष्टि से परीक्षा करने पर नितान्त गलत सिद्ध हो रहा है । जैसे कि, शकुन्तला का जन्म एवं संवर्धन जहाँ हुआ था, वह हिमालय की गोदी में, मालिनी नदी के तट पर था । लेकिन वहाँ (हिमालय के स्थान में) कहीं पर चन्दन के वृक्ष होते नहीं है । तथा वनस्पतिशास्त्र की जानकारी के अनुसार चन्दन के बडे वृक्ष होते है, कदापि चन्दन की लता नहीं होती है । इस दृष्टि से भी देवनागरी वाचना वाली पाण्डुलिपिओं में संचरित हुआ पाठ भारी मात्रा में प्रदूषित हुआ है वह निःशंक है ।। (यहाँ पर, अन्यान्य प्रमाण भी उपस्थित किये जा सकते हैं, लेकिन विस्तरभय से "इति दिङ्-न्याय" से, केवल अंगुलिनिर्देश करके, इस चर्चा को यहाँ विराम देते हैं ।)

निष्कर्षतः कहे तो, निदर्शतया प्रदर्शित किये गये इन दश आन्तरिक प्रमाणों से सुस्पष्टतया कहा जा सकता है कि प्रचलित देवनागरी वाचना का जो लघुपाठ पठन-पाठन में दृढासन लगा कर बैठ गया है, वह "उत्कृष्ट नाट्यकार" के रूप में कालिदास का परिचय देने में सर्वथा समर्थ नहीं है ।।

[3]

अनुसन्धान के लिए किया हुआ क्षेत्रकार्य एवं सामग्री का एकत्रीकरण :-- (Field work and data collection) इस नाटक के लघुपाठ वाली देवनागरी वाचना की प्रकाशित आवृत्तिओं में बहुविध मर्यादाएँ एवं विसंगतियों का परामर्श करने के बाद, इस नाटक के देवनागरी पाठ का परिवर्तन-इतिहास जानना अनिवार्य महेसुस होता है । दो हजार वर्ष पहले लिखा गया यह नाटक यथातथ रूप में हम तक पहुँचा होगा – ऐसा मानना केवल मुग्धता होगी । जिसके लिए अधिक से अधिक-पाण्डुलिपियों के आधार पर एक अभिनव प्रयास करने का उपक्रम किया है । उपलब्ध हो रही पाण्डुलिपियाँ तीन सो – चार सो वर्ष से अधिक पुरानी नहीं हैं । ऐसी परवर्ती काल में लिखी गई इन पाण्डुलिपियों के आधार पर मूल पाठ का निर्धारण करना तो प्रायः सम्भव नहीं है । किन्तु, कालचक्र के पाश में घिसाती पिटाती रही पाठपरम्परा की साक्षीभूत

जितनी भी पाण्डुलिपियाँ अवशिष्ट रह गई हैं, उनका तर्क के सहारे विश्लेषण किया जा सकता है। जिससे "इस नाटक के देवनागरी पाठ का प्राचीनतम स्वरूप कैसा था, तथा उस में कैसे कैसे परिवर्तन होते रहे हैं ?" उस भूतकाल के अन्धकारग्रस्त पट पर कुछ प्रकाश तो अवश्य डाला जा सकता है। इस महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर न्यू केटलोगस केटलोरम्, मद्रास एवं राष्ट्रिय पाण्डुलिपि मीशन, दिल्ली के डेटा-बेझ का पहला अभ्यास किया[7]। जिससे मालूम हुआ कि इस देश की शारदा, ग्रन्थ, मैथिली, बंगाली, तेलुगु, देवनागरी आदि अनेक पुरानी लिपिओं में लिखी गई सहस्र पर्यन्त पाण्डुलिपिओं में इस नाटक का पाठ (प्रतिलिपिकरण की परम्परा से) प्रवाहित होता रहा है। उनमें से केवल देवनागरी लिपि में ही लिखी गई शताधिक पाण्डुलिपियाँ अभी भी देश-विदेश के ग्रन्थभण्डारों में विद्यमान है। इस डेटा-बेझ में दी गई जानकारियाँ क्षतिग्रस्त एवं अपूर्ण भी मालूम हुई है। जैसे कि, इसमें राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के संग्रहालयों तथा विविध जैन ग्रन्थ भण्डारों की पाण्डुलिपियों का विवरण संलग्न नहीं किया गया है। एवं बिहार के भोजपुर, बेगुसराई आदि गाँवों में जिन वैयक्तिक संग्रहों में पाण्डुलिपियाँ होने का निर्देश है, वह बीलकुल श्रद्धेय नहीं है। हमने इन सब के साथ पत्राचार किया तो मालूम हुआ कि ऐसी कोई व्यक्ति वहाँ पर है ही नहीं। डाक-विभाग ने मेरे पत्र मेरे पास वापस भेज दिये ! (विहार से एक भी पाण्डुलिपि नहीं प्राप्त हुई।) तथापि निराश हुए विना हमने यथासम्भव व्यापक अभियान उठाया। एशियाटिक सोसायटी, मुंबई, सरस्वती महल लाईब्रेरी, तंजावुर, गवर्न्मेन्ट मेन्युस्क्रिप्ट लाईब्रेरी, चेन्नै, मुंवई युनिवर्सिटी, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, बी. एल. इन्स्टीट्युट, दिल्ली, आलम इकबाल लाईब्रेरी, श्रीनगर, भुवनेश्वर स्टेट म्युझम, भाण्डारकर ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, पूणें, ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, मैसुर, केराला में त्रिपुनितुरा, केराला युनि., त्रिवेन्द्रम्, तिरुपति आदि अनेक स्थानों में रु-ब-रु जा कर पाण्डुलिपियाँ एकत्र की गई। कतिपय ऐसी भी पाण्डुलिपियाँ हैं, जिनको उसके ग्रन्थभण्डार एवं संग्रहालयों में जाकर तथा इन्दिरा गान्धी राष्ट्रिय कला केन्द्र, दिल्ली के कम्प्युटर-स्क्रिन पर बैठ कर साद्यन्त देखी हैं। कुछ स्थान पर मेरे शिष्य-शिष्याओं ने जाकर कतिपय पाण्डुलिपियाँ एकत्र की है। कुछ संस्थानों से सहृदय अध्यापक-मित्रों ने सहायता की है। कुछ पाण्डुलिपियाँ, जो वेब-साइट पर उपलब्ध होती थी, उनको डाउन-लोड करके संगृहीत कर ली है। जिसके फल स्वरूप जो 75 पाण्डुलिपियाँ की सामग्री एकत्र कर पाया हूँ, उसके आधार पर अभिनव समीक्षित पाठसम्पादन का कार्य शूरु किया है। इनमें से 62 पाण्डुलिपियाँ ऐसी है कि जिनमें इस नाटक का पूर्ण पाठ दिया गया है। किन्तु 13 पाण्डुलिपियाँ ऐसी हैं कि जिनमें इस नाटक की केवल प्राकृत-उक्तियों का संस्कृत-च्छायानुवाद (प्राकृतविवृति) ही दिया गया है। मैंने उनका भी संग्रह करके विश्लेषण किया है। प्रस्तुत अभ्यास में इस नाटक के केवल तीसरे अंक को निदर्श के रूप में लेकर विश्लेषण किया जायेगा। तथा अन्ततो गत्वा, इन 75 पाण्डुलिपियों में प्रतिबिम्बित हुए देवनागरी वाचना के (अद्यावधि अज्ञात रहे) प्राचीनतम पाठ की जानकारी दी जायेगी एवं उसी प्राचीनतम पाठ में से क्रमशः आकारित हुए त्रिविध स्वरूपों का उद्घाटन किया जायेगा ।।

[4]

समीक्षणीय सामग्री (प्राप्त की गई पाण्डुलिपियों का विवरण) (Critical Apparatus):– प्रस्तुत अभ्यास में कुल मिला कर पीचत्तर (75) देवनागरी पाण्डुलिपियों का विनियोग किया गया है। इन 75 पाण्डुलिपियों में से कतिपय ऐसी हैं कि जिनकी पेपर कॉपी मेरे पास है एवं बहुशः स्केन कॉपी या फोटो-कॉपी के रूप में संगृहीत की हैं। इन 75 देवनागरी पाण्डुलिपियों का परीक्षण करते हुए आश्चर्य एवं आनन्दजनक जानकारियाँ मिली हैं। किन्तु उस दिशा में जाने से पहले, प्रस्तुत अनुसन्धान के लिए एकत्री की गई सभी पाण्डुलिपियाँ से सम्बद्ध एवं उनके कुछ बहिरंग परीक्षण से जुडी सूचनाएँ देना आवश्यक है। जैसे कि, पाण्डुलिपि कहाँ की है, किस क्रमांक से संगृहीत है, किस समय में लिखी गई है, कितने पृष्ठ है, पूर्ण है या अपूर्ण है ? इत्यादि।

---

[7] द्रष्टव्य है:- परिशिष्ट – 1,

पाठभेदों का विश्लेषण करने पर इन पाण्डुलिपियों को चार यूथों में विभक्त की जा सकती है। अव, उन यूथों के क्रमानुसार पाण्डुलिपियों का परिचय निम्नोक्त हैः--

प्रथम यूथ (क-1) में प्राप्त होनेवाली 5 पाण्डुलिपियों का विवरणः---

[1] श्रीहेमचन्द्राचार्य ज्ञानमन्दिर, पाटण, (उत्तर गुजरात) की पाण्डुलिपि का क्रमांक सं. – 16630. (डिब्बा नं. 349 में जो सुरक्षित रखी है।) हस्तलिखित प्रतियों की विवरणात्मक सूचि में इस पाण्डुलिपि के लिए "अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक टिप्पणी सह" ऐसा परिचय दिया गया है। किन्तु उसमें टिप्पणी के नाम पर, हांशिया में मूल की प्राकृत उक्तियों का बहुशः संस्कृत छायानुवाद दिया है। इस प्रति में 1 से 37 पृष्ठांकन किया गया है, अतः उसमें कुल मिला कर 73 पन्ने समाविष्ट हैं। पुराने कागज पर लिखी गई यह प्रति करीब 400 वर्ष पुरानी है। क्योंकि उसके अन्तिम पंक्ति में लिखा है कि - *"समाप्तमिदमभिज्ञानशाकुन्तलं नाम नाटकं ॥ श्री ॥ लेखकपाठयोः । ॥ शुभं भवतु ॥ कल्याणमस्तु ॥ श्रीधर्म्मर्मूर्त्ति-सुरीद्रैर्विधि-पक्ष-गणे-न्दुभिः । गुणसौभाग्य-सूरिभ्यो दत्तेयं प्रीतये प्रतिः ॥"* इससे स्पष्ट होता है कि यह हस्तलिखित प्रति श्रीगुणसौभाग्य सूरि नाम के जैन साधु के लिए लिखी गई थी। यह गुणसौभाग्य सूरि का पहले नाम जयवन्त उपाध्याय था, जो प्राकृत "शृङ्गार-मञ्जरी" नामक काव्य के रचयिता है। तथा उन्होंने मम्मट के "काव्यप्रकाश" पर एक संस्कृत टीका भी लिखी थी। उनका समय विक्रम संवत 1614 है, अर्थात् ई. स. 1558 के आसपास में यह प्रति लिखी गई होगी। इसके आधार पर अनुमान होता है कि यह प्रति 400 वर्ष पुरानी है॥ (इस नाटक की उपलब्ध हो रही सभी देवनागरी पाण्डुलिपियों में यह प्रति सब से प्राचीनतम प्रतीत हो रही है। तथा उस प्रति के पाठ की धारा अन्य प्रतियों में संचरित हुई दिखाई पडती है। अतः इस प्रति का मूल्य सर्वाधिक है॥)

इस प्रति में औ-कार, ऐ-कार एवं ए-कार की मात्राएं "अग्रमात्रा" के रूप में लिखी गई हैं। इस प्रकार की लेखन-शैली भी 13वीं से लेकर 16वीं शती तक के कालावधि में प्रचलित थी। इससे भी प्रस्तुत प्रति की प्राचीनता समर्थित हो जाती है॥

इस प्राचीनतम प्रति की विशेषता है कि उसमें (क) प्राकृत उक्तियों में "य-श्रुति" का प्रभाव मिलता है। जैसे कि, इव → विय।, नगरगमनस्य → णयर-गमणस्स।, मुहूर्त्तकम् → मुहुत्तयं।, सहकार → सहयार। एवमेव, (ख) क-ग-च-ज-त-द-प-य-वां लोपः। सूत्रोक्त व्यंजनों का लोप प्रायः नहीं हुआ है। यानि मध्यवर्ती व्यंजन (दो स्वरों के बीच में आये हुए व्यंजन) जैसे कि क-ग-च आदि का लोप नहीं किया गया है। उदाहरणतया – मूषक → मूसक।, नदीवेगस्य → नदीवेगस्स।, हृदय → हियय। (महाराष्ट्री प्राकृत में तो मूसग या मूसअ, णईवेअस्स, हिअअ ऐसे रूप मिलते हैं।)॥ [डॉ. दिलीपभाई पटेल, उत्तर गुजरात युनि., पाटण ने यह पाण्डुलिपि उपलब्ध करवाई है।]

[2] लालभाई दलपतभाई प्राच्यविद्या मन्दिर (एल. डी. इन्स्टीट्युट ओफ इन्डोलोजी) अहमदावाद में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निवद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 1948 है। इस पाण्डुलिपि में इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है। इस संग्रहालय की पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक सूचि में इस प्रति का लेखन-काल विक्रम संवत 1750 बताया है। अर्थात् ई.स.1693 में इस पाण्डुलिपि की रचना हुई है। इस पाण्डुलिपि में कुल पृष्ठ 23 (यानि 46 पृष्ठ) समाविष्ट है। किन्तु उसमें 16 क्रमांक का पृष्ठ नहीं है, यानि कुल दो पृष्ठ नहीं है। इस अप्राप्य अंश में इस नाटक का षष्ठांक का प्रवेशक (जिसमें धीवर-प्रसंग आया है, उस)का पाठ्यांश है।

इस पाण्डुलिपि की कुछ प्रमुख विशेताएँ इस तरह की है :-- (क) पाटण की 16630 क्रमांक की जो पाण्डुलिपि है उसकी प्रतिकृति रूप (डिट्टो कॉपी) यह पाण्डुलिपि प्रतीत होती है। क्योंकि दोनों में समान पाठ की धारा दिखाई देती है। तथा दोनों में अशुद्धियाँ भी एक समान है। (ख) प्राकृत उक्तियों में य-श्रुति का प्रचलन मिलता है। (ग) औ-कार, ओ-कार,

एकार तथा ऐ-कार के लेखन में अग्रमात्रा (पडिमात्रा) का उपयोग किया गया है । स्वतन्त्र रूप से लिखे गये ओ-कार का लेखनाकार प्राचीन काल का है । (घ) प्राकृत उक्तियाँ की संस्कृत छाया प्रायः नहीं दी गई है, कदाचित् कुत्रचित् एक-दो वाक्यों की छाया दी गई है । (ङ) इस प्रति के लेखक ने स-कार के स्थान में श-कार, तथा ख-कार के स्थान में ष-कार का विनियोग किया है ।। [डॉ. जितेन्द्रभाई शाह, पूर्वनिदेशक, एल.डी.इन्डोलोजी ने यह पाण्डुलिपि की छाया प्रति प्रदान की है ।]

[3] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 21422 है । इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । इस संग्रहालय की पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक सूचि में इस प्रति का लेखन-काल विक्रम संवत 1684 बताया है । अर्थात् ई. स. 1628 में इस पाण्डुलिपि की रचना हुई है । इस पाण्डुलिपि में कुल पृष्ठांक 32 (यानि 64 पृष्ठ) समाविष्ट है । यह प्रति जोधपुर में ही लिखी गई थी ऐसा पुष्पिका के निम्नोक्त वाक्यों से मालूम होता है:—*संवद्वेदवस्वर्त्वेन्दुप्रमिता आश्विन बलक्षराकादश्यां श्रीयोधपुरे । श्रीविमलोदयोपाध्यायमहेन्द्राणां शिष्यमुख्याः पं. श्रीमहिमनिधानाः । तच्छिष्येन पं.पुण्यनिधानेन चिरंजीवी उदयनिधान सुजाणसिंहादि सहाध्येनालेखि ।।*

(क) इस प्रति में संचरित हुआ पाठ पूर्वोक्त दोनों प्रतियों के पाठ के साथ बहुशः साम्य रखता है । (ख) लेकिन यहाँ प्राकृत उक्तियों में य-श्रुति का प्रचलन नहीं मिलता है । (ग) औ-कार, ओ-कार, एकार तथा ऐ-कार के लेखन में अग्रमात्रा (पडिमात्रा) का उपयोग किया गया है । एवं स्वतन्त्र रूप से लिखे गये ओ-कार का लेखनाकार भी प्राचीन काल का है । (घ) प्राकृत उक्तियाँ की संस्कृत छाया प्रायः नहीं दी गई है, कदाचित् कुत्रचित् एक-दो वाक्यों की छाया हांशिया में दी गई है ।

[4] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 23590 है । इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । इस संग्रहालय की पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक सूचि में इस प्रति का लेखन-काल विक्रम संवत 1700 बताया है । अर्थात् ई. स. 1644 में इस पाण्डुलिपि की रचना हुई है । इस पाण्डुलिपि में कुल मिला कर दो ग्रन्थ लिखे गये है । आरम्भ के 1 से 56 पृष्ठों में प्रबोधचन्द्रोदय नाटक है, और तत्पश्चात् पृष्ठ 57 से 116 पृष्ठों में अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का पाठ लिखा है ।

[5] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 28149 है । इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । इस संग्रहालय की पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक सूचि में इस प्रति का लेखन-काल विक्रम संवत 1750 बताया है । अर्थात् ई.स.1693 में इस पाण्डुलिपि की रचना हुई है । इस पाण्डुलिपि में कुल पृष्ठांक 23 (यानि 46 पृष्ठ) समाविष्ट है । किन्तु उसमें 16 क्रमांक का पृष्ठ नहीं है, यानि कुल दो पृष्ठ नहीं है । [जोधपुर से इन पाण्डुलिपियाँ ले आने का कार्य मेरे शिष्य डॉ. मनुभाई परमार, व्याख्याता, वडाली आर्ट्स कॉलेज ने किया है ।]

<u>द्वितीय यूथ (ख-1) में प्राप्त होनेवाली 6 पाण्डुलिपियों का विवरणः—</u>

[6] आनन्दाश्रम शोध-संस्थान, पूर्णे, में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 52-517 है । इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । इस संग्रहालय की इस पाण्डुलिपि का लेखन-काल विक्रम संवत 1881, अषाढ सुदी, सोमवार बताया है । अर्थात् ई. स.1825 में इस पाण्डुलिपि की रचना हुई है । उसके लेखक का नाम जोशी श्रीकृष्णात्मज हरि है । प्राकृत उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद इस के हांशियों में रखा है ।

(इसी आनन्दाश्रम शोध-संस्थान, पूर्णे से एक प्रति ऐसी भी प्राप्त होती है कि जिसमें इस नाटक की केवल प्राकृत उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद ही दिया गया है । इस प्रति का क्रमांक एस.4(3) 52-519 है । इस प्रति की महत्ता इस बात में है कि इसमें इस नाटक के बृहत्पाठ में प्राप्त होने वाली प्राकृत-उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है ! लेकिन इस विषय की चर्चा बाद में की जायेगी ।।)

[7] हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर, पाटण में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 6654 है। (यह प्रति मूलतः वाडी पार्श्वनाथ का ग्रन्थभण्डार, पाटण की है ।) इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । किन्तु इस प्रति अपूर्ण है, जिसमें सातवें अंक का अन्तिम भाग नहीं है । कुल पृष्ठ 45 है । इसमें प्राकृत उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद नहीं दिया गया है । लेखक ने अग्रमात्रा का प्रयोग किया है, जिससे उसकी प्राचीनता स्पष्ट हो जाती है । [डॉ. दिलीपभाई पटेल, उत्तर गुजरात युनि., पाटण ने यह पाण्डुलिपि उपलब्ध करवाई है ।]

[8] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 39447 है । इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । इस प्रति का 16वीं शती लेखन-काल बताया गया है, परन्तु उसमें पुष्पिका नहीं है । तथा पञ्चम अंक के मध्य में ही पाठ पूरा हो जाता है । देवनागरी के बडे बडे अक्षरों में इस प्रति लिखी गई है । कुल पृष्ठ 40 सुरक्षित रहे हैं ।

[9] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, भरतपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निवद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 7578 है । इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । सातवा अंक अपूर्ण रहा है, क्योंकि उसमें भरतवाक्य का अभाव है । अतः पुष्पिका भी अनुपलब्ध है । तथापि उस प्रति में 145 पृष्ठ तो है ।

[10] भो. जे. अध्ययन संशोधन विद्याभवन, (गुजरात विद्यासभा), अहमदावाद में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 6370 है । इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । इस संग्रहालय की पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक सूचि में इस प्रति का **लेखन-स्थान वृन्दावन** है । उसको ई.स.1765 में लिखी गई है । प्रतिलिपि-कर्ता ने पुष्पिका में लिखा है कि – *शुभमस्तु, संवत् 1921 मिति आशून वदि 6 बुधवार लिखतस्, श्रीवृन्दावनमध्ये पठनार्थ श्री गोस्वामि मनोहरवल्लभजी हस्ताक्षर-व्रजमोहन 0 0 ॥*

लोलिंबराजः खलु तीर्थराजे मुक्तिं प्रपेदे सुर-दुर्विभाव्याम् ।
जीवन्सदासीत्सकलाघकारीमृतः सा(?)नर्ब्रह्मवपुर्बभूव ॥ 1 ॥
बंधनान्यपि बंहूनि भवन्तिं प्रेमतंतुकृत-बंधनमन्यत् ।
दारुभेदनरतोऽपि षडंघ्रिः पंकजस्य रागविबद्धः ॥ 2 ॥

लेखन-काल विक्रम संवत 1921 बताया है । अर्थात् ई. स. 1865 में इस पाण्डुलिपि की रचना हुई है । इस पाण्डुलिपि में कुल पृष्ठांक 1 से 47 समाविष्ट है ॥

[11] भारत-कला भवन, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 87 है । इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । इस प्रति में श्रीगणेशाय नमः । श्रीरामः शरणं मम । लिख कर मंगल किया है । परन्तु इस पाण्डुलिपि के अन्त में लेखक ने पुष्पिका नहीं दी है । अतः उसका लेखन-काल हम नहीं जान सकते हैं । यहाँ ध्यानास्पद बिन्दु यह है कि इसके प्रस्तावना भाग में नाटक का शीर्षक "अभिज्ञानशकुन्तला" दिया गया है । (पाणडुलिपि के आरम्भ में कुल नव पृष्ठ किसी अन्य प्रति के जोड दिये गये हैं । उनके पीछे 114 पृष्ठों में नाटक पाठ लिखा है ।) यहाँ प्राकृत उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद कहीं पर नहीं दिया गया है ।

<u>प्रथम यूथ (क-1) की वंशज-पाण्डुलिपियाँ, जिनमें लघुपाठ संचरित हुआ है और इस यूथ का उप-विभाजन (क-2) के सांकेतिक नाम से किया गया है । उसमें शामिल 15 पाण्डुलिपियों का विवरणः---</u>

[12] लालचंद शोध पुस्तकालय, (लाहौर), डी. ए. वी. कॉलेज, चण्डीगढ में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 5448 है । (इस पाण्डुलिपि को डी.ए.वी. कॉलेज, चण्डीगढ की वेव-साईट http://www.dav.splrarebooks.com/ पर से प्राप्त की गई है । इस संस्था के हम आभारी है, क्योंकि उन्होंने अपने संग्रह

की सभी पाण्डुलिपियाँ निःशुल्क डाउन-लोडेवल वनाई है। यहाँ से मैंने इस नाटक की दो पाण्डुलिपियाँ Manuscript No. Record. 5623, & Manuscript no. 5448. प्राप्त की है।) इसमें इस नाटक का संक्षिप्तपाठ संचरित हुआ है। इस प्रति का लेखन-काल विक्रम संवत 1736 वताया है। अर्थात् ई. स. 1680 में इस पाण्डुलिपि की रचना हुई है। इस पाण्डुलिपि में कुल पृष्ठांक 63 (यानि 126 पृष्ठ) समाविष्ट है। उसमें काश्मीरी वृहत्पाठ का ही संक्षिप्तीकरण देखा जा रहा है। जिसमें 64 से 76 तक के पृष्ठ वेब-साईट पर उपलब्ध नहीं है।

इसके तृतीयांक में 26 श्लोकों वाला पाठ है। तथा इसमें "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है। तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादा-हता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है। [डॉ. कुलदीप धीमान ने इस पाण्डुलिपि की जानकारी उपलब्ध करवाई है।]

[13] भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्युट, पूर्णे में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 193 है। मूतः प्रोफे. ब्युल्हर ने राजपुताना (**बिकानेरी**) से इस पाण्डुलिपि को ई.स. 1875 में प्राप्त की थी, लेकिन उस प्रति में उसका लेखन-काल ई स.1532 वताया गया है। प्रो. ब्युह्लर के अभिप्राय मुताबिक देवनागरी पाठ की यह प्राचीनतम पाण्डुलिपि है। लेकिन हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर, पाटण की 16630 क्रमांक वाली पाण्डुलिपि ही सब से प्राचीनतम उपलब्ध पाण्डुलिपि हैं। जिसका लेखन-काल गुणसौभाग्य (जयवन्त सुरी) का काल, यानि ई.स.1457 निश्चित हुआ है। इस विकानेरी पाण्डुलिपि वर्तमान में भाण्डारकर इन्स्टीट्युट में रखी गई है। हाँ, इतना जरूर उल्लेखनीय है कि देवनागरी वाचना के संक्षिप्त किये गये पाठ का प्राचीनतम पाठ इस विकानेरी पाण्डुलिपि, क्रमांक 193 में, उपलब्ध है। तथा इसी देवनागरी वाचना के वृहत्पाठ का प्राचीनतम पाठ पाटण की प्रति 16630 में उपलब्ध है।।

इस पाण्डुलिपि का अभ्यास डॉ. कार्ल बुरखाड ने 1881 में प्रकाशित किया है। द्रष्टव्य हैः—Lectiones codicis C'akuntali Bikanirensis, by Karl Burkhard, 1881, See : Achter Jahresbericht uber das K.K.Franz – Joseph, Gymnasium in Wie, 1881 / 82.

इसके तृतीयांक में 25 श्लोकों वाला पाठ है। तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है। तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है।

[14] डेक्कन कॉलेज, पूर्णे में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निवद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 10948 है। इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है। इसके तृतीयांक में 30 श्लोकों वाला पाठ है। तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है। तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है।

[15] भोगीलाल लहेरचंद इन्स्टीट्युट ओफ इन्डोलोजी, दिल्ली में संगृहीत देंवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 3964 है। इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है। इसके तृतीयांक में 29 श्लोकों वाला पाठ है। तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है। तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है।

[16] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, कोटा में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 1322 है। इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है। इसके तृतीयांक में 29 श्लोकों वाला पाठ है। तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है। तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है।

[17] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, कोटा में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 5133 है। इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1635 है। इस प्रति के तृतीयांक में 30 श्लोकों वाला पाठ है। तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है। तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है।

[18] महावीर दिगम्बर जैन संस्था, जयपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 1223 है। इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1793 है। इसके तृतीयांक में 29 श्लोकों वाला पाठ है। तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है। तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है।[डॉ. धर्मेन्द जैन ने यह पाण्डुलिपि उपलब्ध करवाने में साहाय्य की है।]

[19] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जयपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 1224 है। इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स. 1791 है। इसके तृतीयांक में 30 श्लोकों वाला पाठ है। तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है। तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है।

[20] सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, उज्जयिनी में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 5875 है। इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स. 1803 है। इसके तृतीयांक में 30 श्लोकों वाला पाठ है। तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है। तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है। [विक्रम युनिवर्सिटी के वर्तमान कुलपतिश्री डॉ. बालकृष्ण शर्मा जी के निर्देशन पर डॉ. शितांशु रथ ने यह पाण्डुलिपि उपलब्ध करवाई है।]

[21] गंगानाथ झा शोध संस्थान, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 49352 है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स. 1564 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 26 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[22] गंगानाथ झा शोध संस्थान, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 2851 है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1773 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 25 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग कीं सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[23] सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, उज्जयिनी में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 15225 है। इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1831 है। इसके तृतीयांक में 28 श्लोकों वाला पाठ है। तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है। लेकिन इसमें शकुन्तला को

"सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले, उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।

[24] सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, उज्जयिनी में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निवद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 1374 है। इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है। इसके तृतीयांक में 28 श्लोकों वाला पाठ है। तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गंमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है। लेकिन इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले, उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।

[25] युनिवर्सिटी ओफ पेनसिल्वानिया, फिलाडेल्फिया, अमरिका में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निवद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 390-524 है। इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है। इसके तृतीयांक में 27 श्लोकों वाला पाठ है। तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है। लेकिन इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले, उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है। [डॉ. देवेन पटेल, अमरिका ने यह पाण्डुलिपि उपलब्ध करवाने में साहाय्य की है।]

[26] डेक्कन कॉलेज, पूर्णे में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निवद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 10730 है। इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है। इसके तृतीयांक में 29 श्लोकों वाला पाठ है। तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य में पाठभेद करके, "लब्धोत्सवा उपशमं गमिष्यति" ऐसे वाक्य की प्राप्ति होती है। एवमेव, इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले, उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है। [डॉ. हेमन्त दवे, सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभ विद्यानगर ने यह पाण्डुलिपि उपलब्ध करवाने में साहाय्य की है।]

<u>प्रथम यूथ (ख-1) की वंशज-पाण्डुलिपियाँ, जिनमें लघुपाठ संचरित हुआ है और इस यूथ का उप-विभाजन (ख-2) के सांकेतिक नाम से किया गया है। वैसी 36 पाण्डुलिपियों का विवरणः---</u>

[27] डेक्कन कॉलेज, पूर्णे में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 10948 है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स. 1742 है। इस पाण्डुलिपि के अनुसार तृतीयांक में 32 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[28] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 7294 है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स. 1724 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 31 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[29] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, कोटा में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 7244 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 31 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया

जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[30] गवर्नमेन्ट ओरिएन्टल मेन्युस्क्रिप्ट लाईब्रेरी, (अण्णा सेन्टेनरी बिल्डींग) चेन्नै में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 12471 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 30 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[31] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 28027 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 29 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[32] चुनीलाल गांधी विद्याभवन (शास्त्री दिनमणिशंकर पुस्तक भण्डार में सुरक्षित) सूरत, (गुजरात) में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 874 है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1863 है । डॉ. धवल पटेल जी ने इस संस्थान की सभी पाण्डुलिपियाँ वेब-साईट पर फ्री डाउन-लोडेबल बनाई हैं, हम उनके आभारी हैं । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 29 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।) [डॉ. धवल पटेल, आई.ए.एस. कलेक्टर सूरत ने यह पाण्डुलिपि वेब-साईट पर उपलब्ध करवाई है ।]

[33] गंगानाथ झा शोध संस्थान, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 45086 है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स. 1802 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 29 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[34] सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में संगृहीत देवनागरीं-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 2073 है । इस विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन लाईब्रेरी की पाण्डुलिपियाँ सुदुर्लभ होती हैं । अतः इसकी स्केन-कॉपी देखने के लिए इन्दिरा गान्धी राष्ट्रिय कला केन्द्र, दिल्ली के कम्प्युटर स्क्रिन पर बैठ कर पाठभेद प्राप्त किये गये हैं । इस पाण्डुलिपि

के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 29 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जव राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तव वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पांण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[35] आनन्दाश्रम शोध संस्थान, पूर्णे में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक एस(4) 52-514 है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1841 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 29 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[36] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निवद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 16657 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 28 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जव राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तव वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[37] ईलाहाबाद राजकीय पुस्तकालय, अल्लापुर, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 127-324 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 28 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[38] गंगानाथ झा शोध संस्थान, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 9247 है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स. 1634 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 28 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एंक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[39] जम्मू रघुनाथ टेम्पल लाईब्रेरी, जम्मू में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 766-796 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 28 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जव राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस

विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)[यह प्रति डॉ. बी. एन. झा, जम्मू ने उपलब्ध करवाने में साहाय्य की है ।]

[40] भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्युट, पूर्णे में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 409 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 27 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोपध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[41] जम्मू रघुनाथ टेम्पल लाईब्रेरी, जम्मू में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 4236 है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1937 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 27 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोपध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[42] गंगानाथ शोध संस्थान, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 43427 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 27 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "*राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति* ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोपध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[43] जम्मू रघुनाथ टेम्पल लाईब्रेरी, जम्मू में संगृहीत इस पाण्डुलिपि का क्रमांक 423 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 27 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोपध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)[डॉ. देवीसिंह राठवा जी, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण ने इन्टरनेट से यह प्रति प्राप्त करके, मुझे पहुँचाई है ।]

[44] कोबा, गांधीनगर स्थित कैलाससागर महावीर जैन पुस्तकालय में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 9989 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 26 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोपध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[45] गंगानाथ झा शोध संस्थान, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निवद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 37377 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 26 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जव राजा दुष्यन्त को वैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[46] ईलाहाबाद म्युझीयम, शहीद वीर चन्द्रशेखर आझाद पार्क, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 14193 है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1728 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 25 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जव राजा दुष्यन्त को वैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[47] होग्टन कॉलेज, हार्वर्ड युनिवर्सिटी, अमरिका में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निवद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 1086 है। (यह प्रति डॉ. अञ्जनाबेन महेता ने हमें प्राप्त करवाई है।) इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 25 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जव राजा दुष्यन्त को वैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।) [डॉ. अञ्जनाबेन महेता, अहमदावाद ने यह प्रति प्राप्त करने में योगदान दिया है।]

[48] कुरुक्षेत्र युनिवर्सिटी, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) स्थित मेन्युस्क्रिप्ट कन्झर्वेशन सेन्टर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निवद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 51425 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 25 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जव राजा दुष्यन्त को वैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।) [प्रोफे. श्री सुरेन्द्रमोहन मिश्र जी ने यह पाण्डुलिपि उपलब्ध करवाई है।]

[49] जम्मू रघुनाथ टेम्पल लाईब्रेरी, जम्मू में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 422 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 25 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जव राजा दुष्यन्त को वैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[50] अभय महावीर जैन ज्ञान मन्दिर, बीकानेर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निवद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 13442 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[51] भारतीय विद्याभवन, चोपाटी, मुंबई में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 542 है। (डॉ. गिरिशभाई जानी ने यह प्रति उपलब्ध करवाई है।) इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)[डॉ. गिरिशभाई जानी ने इस प्रति प्राप्त करवाने में सहयोग दिया है।]

[52] नेपाल नेशनल आर्काईव्ज़, काठमण्डु, (नेपाल) में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निवद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 5-3299 है। (यह पाण्डुलिपि डॉ. कालिन्दी पाठक ने उपलब्ध करवाई है।) इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।) [डॉ. कालिन्दी पाठक ने काठमण्डु जाकर, ये तीन पाण्डुलिपियाँ ले आकर सहयोग दिया है।]

[53] नेपाल नेशनल आर्काईव्ज़, काठमण्डु, (नेपाल) में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निवद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 1-1696 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।) ।(यह पाण्डुलिपि डॉ. कालिन्दी पाठक ने उपलब्ध करवाई है।)

[54] नेपाल नेशनल आर्काईव्ज़, काठमण्डु, (नेपाल) में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निवद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 15420 है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1786 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।) । (यह पाण्डुलिपि डॉ. कालिन्दी पाठक ने उपलब्ध करवाई है।)

[55] आनन्दाश्रम शोध संस्थान, पूर्णे में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निवद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक एस(4) 52-516 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।) (यह प्रति डॉ. कमलेशभाई चोक्सी जी ने उपलब्ध करवाई है।)

[56] सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, उज्जयिनी में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 6765 है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1830 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[57] सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, उज्जयिनी में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 5731 है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1830 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[58] चिन्मय रिसर्च फाउन्डेशन, एर्णाकुलम्, (केराला) में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक पी.एम. 10 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।) (यह पाण्डुलिपि डॉ. दिलीपकुमार राणा जी ने उपलब्ध करवाने में सहयोग दिया है।)

[59] जम्मू रघुनाथ टेम्पल लाईब्रेरी, जम्मू में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 6341 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[60] राधनपुर विजयगच्छ जैनशाला ग्रन्थभण्डार, उत्तर गुजरात में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक (डाभडो. 53, प्रति)1783 है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1757 है। (इस प्रति को सुलभ कराने का यश

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभण्डार, साबरमती, अमदावाद एवं डॉ. श्रीजितेन्द्र शाह जी को है ।) इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जव राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।) [डॉ. जितेन्द्र शाह के सहयोग से यह प्रति प्राप्त हो सकी है ।]

[61] सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, उज्जयिनी में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निवद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 14189 है । यह प्रति अपूर्ण है, जिसमें तीसरे अंक का पाठ्यांश लुप्त है ।

[62] लालचंद शोध पुस्तकालय, (लाहौर), डी. ए. वी. कॉलेज, चण्डीगढ में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निवद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 3676 है । यह पाण्डुलिपि वेब-साईट पर उपलब्ध है । यह प्रति अपूर्ण है एवं उसमें तीसरे अंक का पाठ्यांश लुप्त है ।

प्राकृत उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद जिनमें दिया गया है वैसी 13 पाण्डुलिपियाँ,

[63] महावीर दिगम्बर जैन पाण्डुलिपि संरक्षण केन्द्र, जयपुर में संगृहीत **अभिज्ञानशाकुन्तल प्राकृतांश टीका नामक** देवनागरी-लिपि-निबद्ध इस पाण्डुलिपि का क्रमांक 23986 है ।

[64] भो. जे. विद्याभवन, अहमदावाद, गुजरात में संगृहीत **शाकुन्तल-बालावबोध** नामक इस प्राकृत-उक्तियों के संस्कृत च्छायानुवाद की पाण्डुलिपि का पाण्डुलिपि का क्रमांक 3136 है । जिसमें 28 फोलियो है । पत्र का परिमाण 23-5 x 12-5 है । उसका लेखन-काल शक संवत् 1775 है ।

[65] आनन्दाश्रम शोध-संस्थान, पूर्णे में संगृहीत एक प्रति में इस नाटक की केवल प्राकृत उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद ही दिया गया है । इस प्रति का क्रमांक एस.4(3) 52-519 है । इस प्रति की महत्ता इस बात में है कि इसमें इस नाटक के बृहत्पाठ वाले पाठ का संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है !

[66] मानसिंह पाण्डुलिपि पुस्तकालय, जोधपुर, में संगृहीत प्राकृत का छायानुवाद वाली प्रति का क्रमांक 929 है । जिसमें देवनागरी के लघुपाठ की प्राकृत-उक्तियों का संस्कृतानुवाद दिया है ।

[67] भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्युट, पूर्णे में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 472-1887-91 है । इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है ।

[68] भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्युट, पूर्णे में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 79-1907-15 है । इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है ।

[69] भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्युट, पूर्णे में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 523-1887-91 है । इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है ।

[70] भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्युट, पूर्णे में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 200-1879-80 है । इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है ।

[71] ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, एम. एस. युनि. ओफ बरोडा, वडोदरा में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 12594 है । इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है ।

[72] सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, विक्रम युनिवर्सिटी, उज्जयिनी में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 1189 है । इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है । लेकिन उसको शाकुन्तल-टीका ऐसा नाम दिया गया है, जो बालह्मजिद् नामके व्याख्याकार ने लिखी है ।

[73] गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्युट, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 32861 है । इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है ।

[74] आनन्दाश्रम शोध संस्थान, पूर्णे में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 53-521 है । इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है ।

[75] आनन्दाश्रम शोध संस्थान, पूर्णे में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 53-522 है । इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है ।।

इस तरह से यहाँ (क-1) यूथ में बृहत्पाठ वाली 5 पाण्डुलिपियाँ + (ख-1) यूथ में बृहत्पाठ वाली 6 पाण्डुलिपियाँ + (क-2) यूथ की संक्षिप्त पाठ वाली 13 पाण्डुलिपियाँ + (ख-2) यूथ की संक्षिप्ततर पाठवाली 38 पाण्डुलिपियाँ = 62 । उन 62 के साथ + प्राकृत उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद देने वाली 13 पाण्डुलिपियाँ मिला कर, कुल 75 पाण्डुलिपियों का योग होता है ।।

[4]

सहायक सामग्री (Testimonial) : एकत्र की गई इन पाण्डुलिपियों के लिपिकार ने पुष्पिकाओं में इनके लेखन-काल का निर्देश किया होता है । इसके आधार पर उन पाण्डुलिपियों की प्राचीनता या प्राचीनतरता की जानकारी हांसिल कर सकते हैं । लेकिन, लेखन-काल के आधार पर प्राचीनतर सिद्ध हो रही उन उन पाण्डुलिपिओं में जो पाठ परम्परया संचरित (प्रवाहित) होता रहा है, वह कितने पुरातन काल से चला आ रहा है ? वह जानने के लिए अलंकारशास्त्रादि के ग्रन्थों का "सहायक सामग्री" के रूप में विनियोग किया जाता है । प्रस्तुत अनुसन्धान में प्रमुखतया दो ग्रन्थों का विनियोग किया है: –

(1) भोजराज का शृङ्गारप्रकाश (ई.स.1050) एवं

(2) हेमचन्द्राचार्य का सिद्धहेमशब्दानुशासनम् (ई.स.1172) ।

इन दो ग्रन्थों में अभिज्ञानशाकुन्तल के गद्य एवं पद्य वाक्यों के जो उद्धरण मिलते हैं, उनके आधार पर प्राप्त की गई इन 75 पाण्डुलिपिओं में संचरित हुए बहुविध पाठों में से किस तरह के पाठ की प्राचीनतमता निर्णीत हो सकती है ? उसकी गवेषणा की जायेगी ।।

[5]

प्राप्त की गई पाण्डुलिपियों का वंशवृक्ष (Steema codicum / Genealogical tree) :– अब हमें इन सभी पाण्डुलिपियों का पारस्परिक आनुवंशिक सम्बन्ध सोचना चाहिए । अर्थात् मूल ग्रन्थकार ने (स्वयं कवि कालिदास ने) अपने हाथ से इस नाट्यकृति का पाठ लिखा होगा, उस प्रथम पाण्डुलिपि में से सब से पहले किसी (नटमण्डली के सूत्रधार) ने कोई प्रतिलिपि तैयार की गई होगी । इस प्रथम प्रतिलिपि को आदर्श-प्रति के रूप में दृष्टि समक्ष रखते हुए, किसी अन्य

लिपिकार ने दूसरी प्रतिलिपि बनाई होगी। इस तरह से, एक प्रतिलिपि में से दूसरी प्रतिलिपि वनाने के सिलसिले में, कालक्रम से बहुत सारी प्रतिलिपियाँ बनती रही होगी। जिनमें से वहुत सारी प्रतिलिपिभूत पाण्डुलिपियाँ कालग्रस्त भी होती चली होगी। हमारे लिए बच गई जो पाण्डुलिपियाँ हैं वे तो केवल तीन सो चार सो वर्ष पहले लिखी गई पाण्डुलिपियाँ ही हैं और वे भी स्थानान्तरित होती रही होगी। आंज जो देश के विभिन्न ग्रन्थभण्डारों में सुरक्षित की गई हैं। उनमें से हमने 75 पाण्डुलिपियाँ प्राप्त की हैं। अतः हमारे लिए सब से पहले यह जानना आवश्यक है कि देश के विभिन्न स्थानों में बिखरी हुई इन पाण्डुलिपियों में कौन सी प्रति पूर्वज-प्रति है और कौन सी प्रतियाँ वंशज-प्रतियाँ है ? । प्राप्त की गई इन पाण्डुलिपियों के इस तरह के पारस्परिक आनुवंशिक सम्बन्ध को अनुमान से ढूँढना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से ही प्राचीन से प्राचीनतर, और प्राचीनतर से प्राचीनतम पाठ किस पाण्डुलिपि में सुरक्षित रहा है ? उसका निर्णय किया जा सकता है। पाठालोचक का यह कर्तव्य है कि वह पहले प्राचीनतम पाठ किस पाण्डुलिपि में सुरक्षित है- वह खोज निकाले। तत्पश्चात् उस प्राचीनतम पाठ में से, कैसे कैसे परिवर्तन होते होते अनुगामी काल के प्राचीनतर, प्राचीन एवं अर्वाचीन पाठ बनते गये है ? वह भी प्रदर्शित करे। ऐसा होने पर ही इस नाट्यकृति की पाठयात्रा स्पष्ट होगी।

लेकिन, प्राप्त की गई इन पाण्डुलिपियों का पारस्परिक आनुवंशिक सम्वन्ध खोजने के लिए जो प्रविधि है वह इन पाण्डुलिपियों में प्राप्त हो रहे साम्य एवं वैषम्य का अभ्यास करने की है। जिसके लिए पहले संतुलन-पत्रिकाएँ बनानी आवश्यक है। हमने इस अनुसन्धान कार्य में कागज पर संतुलन-पत्रिकाएँ नहीं वनाई है। उस पुरातन पद्धति को छोड कर, हमने कम्प्युटर की एक्सेल-शीट का विनियोग किया है। आधुनिक काल की इस नवीन सुविधा का उपयोग करने में एकाधिक फायदे हैं। जैसे कि, 1. एक्सेल-शील में लाखों की संख्या में स्तम्भ (कोलम) एवं पंक्तियाँ उपलब्ध होने से असीम डाटा संपूरित किया जा सकता है। 2. उसमें रखा गया डाटा सोर्टिंग-फिल्टरिंग की सुविधा से विश्लेषित करने में बहुत सौकर्य रहता है। 3. भविष्य में नवीन पाण्डुलिपियाँ मिलने पर, भूतकालिक डाटा को पुनः पुनः अप-डेट भी किया जा सकता है। एक्सेल-शीट में बनाई हमारी संतुलन-पत्रिका के चार निदर्श परिशिष्ट – 2 से 5 में रखा गया है। अस्तु ॥

एक्सेल-शीट में बनाई गई संतुलन-पत्रिका में प्रदर्शित हो रहे पाठभेदों के साम्य एवं वैषम्य के डाटा के आधार पर निम्नोक्त जानकारियाँ प्राप्त हुई हैः- इन 75 पाण्डुलिपियों में से कुल एकादश पाण्डुलिपियाँ ऐसी हैं कि जिनमें इस नाटक का **बृहत्पाठ** संचरित हुआ है। इन एकादश पाण्डुलिपियों के तृतीयांक का निदर्शनभूत तुलनात्मक अध्ययन करने से मालूम होता है कि 1. इनमें 42 श्लोकों वाला पाठ विद्यमान है। एवं 2. कतिपय पाण्डुलिपियों में राजा दुष्यन्त तीन सहेलियों के सामने उपस्थित होने पर, रंगमंच पर लेटी हुई शकुन्तला को लज्जा सहित खडी करने के लिए मंचनलक्ष्यी द्विविध योजनाएँ आविष्कृत की गई है। जैसे कि, (क) शकुन्तला अपने हाथ में रहे कमलपुष्प के पत्रों की गणना करती हुई लज्जा सहित खडी रहती है। (ख) शकुन्तला को लज्जा सहित खडी करने के लिए "*लब्धोषध उपशमं गमिष्यति*" जैसे वाक्य का विनियोग करने के साथ साथ, कुछ प्रतियों में शकुन्तला को *मेघनादाहता मयूरी* का उपमान देकर, खडी होती हुई दिखाई गई है। (ग) तो कुछ अन्य पाण्डुलिपियाँ ऐसी भी है कि जिनमें इस तरह के वाक्यों का विनियोग नहीं किया गया है। इनमें तो, जैसे ही राजा को शकुन्तला के साथ में बैठने के लिए विज्ञप्ति की जाती है, उसी क्षण शकुन्तला को "*सलज्जं तिष्ठति*" रंगसूचना से, तुरन्त ही खडी की जाती है। इस तरह के पाठभेदों का सीधा सम्वन्ध इस प्रणय-दृश्य के अभिनयन (मंचन) के साथ है। अतः इस तरह के वाक्य का होना या नहीं होना – इस महत्त्वपूर्ण पाठभेद को भेदक बिन्दु बनाना चाहिए। एवमेव, प्रथम यूथ की पाण्डुलिपियों के प्रतिपक्ष में जो दूसरे यूथ की पाण्डुलिपियाँ हैं, उनमें अंशतः संक्षेपीकरण का प्रारम्भ भी हुआ है (अथवा उनमें कम प्रक्षेप हुए हैं)- ऐसा दिखाई रहा है। जिसके कारण प्रथम यूथ की पाण्डुलिपियों में, इस नाटक के तीसरे अंक में 42 या 41 श्लोक उपलब्ध होते हैं, किन्तु दूसरे यूथ की पाण्डुलिपियों में क्रमशः श्लोकसंख्या कम होती चली है। इसी सिलसिले में, अन्त में जाकर 24 श्लोक वाला तृतीयांक भी प्राप्त होता हैं। अब इन भेदक-विन्दुओं के आधार पर, बृहत्पाठ वाली एकादश पाण्डुलिपियों का सब से पहले "क-1" एवं "ख-1" नामक दो यूथों में विभाजन किया जा सकता हैः—

(1) क-1 यूथ में 1. पाटण की 16630 प्रति, 2. अमदावाद की 1948 प्रति, 3. जोधपुर की 21422 प्रति, 4. जोधपुर की 23590 प्रति, एवं 5. जोधपुर की 28149 प्रति का समावेश होता है। इस यूथ में कुल पाँच पाण्डुलिपियाँ आती हैं। (केवल इन पाँच पाण्डुलिपियों में शकुन्तला के लज्जा भाव को वर्णित करते हुए दुष्यन्त ने एक श्लोक बोला है। जिसमें शकुन्तला ने अपने हाथ में रखे कमल के पत्रों को गिनने की अभिनय किया है।)

(2) दूसरे, ख-1 यूथ में अन्य छह प्रतियों का समावेश होता हैः- जैसे कि, 1. 6. आनन्दाश्रम की 52-517 प्रति, 2. पाटण की 6654 प्रति, 3. जोधपुर की 39447 प्रति, 4. भरतपुर की 7578 प्रति, 5. बी. एच. यु. वाराणसी की 87 प्रति एवं 6. वृन्दावन में लिखित तथा अहमदावाद में संगृहीत 6370 क्रमांक वाली प्रति का समावेश होता है।

यद्यपि इन एकादश पाण्डुलिपिओं के पूर्वोक्त भेदक बिन्दु को छोड कर अन्य पाठ्यांश में प्रायः साम्य मिलता है। अतः इन एकादश प्रतियों को "समान-वंशज" प्रतियाँ कही जा सकती है। किन्तु प्राप्त की गई पाण्डुलिपियों के पाठों (की संतुलन-पत्रिकाओं) में जहाँ जहाँ समान अशुद्धियाँ, समान त्रुटितांश एवं समान अधिक पाठ्यांशों की प्राप्ति होती है, उसके आधार पर उन उन पाण्डुलिपियों को "समान-आदर्शप्रति" वाली प्रतियाँ मानी जाती है। यानि उन सभी पाण्डुलिपियों का प्रतिलिपिकरण कोई एक समान पूर्वज-प्रति को आदर्शप्रति वना कर हुआ होगा। इस दृष्टि से सोचा जाय तो, (मूल महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान में नायक का नाम "दुःषन्त" मिलता है। किन्तु) इस नाटक के पाठ में तो नायक का नाम सामान्यतया "दुष्यन्त" प्रचलित है। कालिदास ने इस नाटक के अनेक स्थानों में दुष्यन्त शब्द का विनियोग किया है। जैसे कि, (1) तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः। एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा ॥ (अंक-1, श्लो. 5), (2) तृतीयांक के आरम्भ में ही, "शिष्यः – अहो महानुभावः पार्थिवो दुष्यन्तः ।", (3) चतुर्थांक में, दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः। अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव ॥ (श्लो.- 4), (4) पञ्चमांक में, श्लोक 23 के नीचे, "भद्रे, प्रथितं दुष्यन्तस्य चरितम् ।तथापीदं न दृश्यते ।", (5) षष्ठांक में, राजा की उक्तिः- "किमनेन संततिरस्ति नास्तीति। येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन वन्धुना। स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम्। (6-23)"। अब इन एकादश देवनागरी पाण्डुलिपियों की संतुलन-पत्रिकाएं देखने से मालूम होता है कि उनमें से, कुल पाँच पाण्डुलिपियों में "दुष्कन्तः" ऐसा नाम मिलता है। (जैसे कि, 1. हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर, पाटण की 16630, 2. एल. डी. इन्डोलोजी, अहमदावाद की 1948, 3. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की 21422, 4. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की 28149 एवं 5. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, भरतपुर की 7578) यहाँ इन पाँचों में जो समान अशुद्ध वर्तनी "दुष्कंतः" मिलती है, उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उन पाँच प्रतियों की "आदर्श-प्रति" के रूप में कोई एक समान पूर्वज-प्रति ही रही होगी ॥

पाठ्यांश के सन्दर्भ में, इन दोनों यूथों में दृष्टिगोचर होने वाले मुख्य साम्य के बिन्दु निम्नोक्त हैः—इन दोनों में इस नाटक का बृहत्पाठ सुरक्षिततया संचरित हुआ है। इस बृहत्पाठ में, 1. दुष्यन्त शकुन्तला के हाथ में मृणाल-वलय पहनाता है, और 2. पुष्परज से कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्र को दुष्यन्त प्रमार्जित कर देता है – ऐसे दो दृश्यों का समावेश किया गया है। जिसके कारण इस देवनागरी वाचना के बृहत्पाठ का कलेवर भी यहाँ 42 से 38 श्लोकों वाला प्राप्त होता है। यद्यपि ऐसा बृहत्पाठ तो अन्यत्र काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं के पाठों में भी होता है। तथापि देवनागरी वाचना के इस बृहत्पाठ की अपनी कुछ अस्मिताएं भी स्पष्टतया उद्भासित हो रही हैं। जैसे कि, (क) उपर्युक्त दो विशेष दृश्यों को 1. "अपरिक्षतकोमलस्य यावत् गृह्यते रसोस्य0" तथा 2. "इदमुपकृतिमबले तव मुखं मया यदाघ्रातम्0" इन दो श्लोकों के बीच में संपुटीकृत करके रखे गये हैं। (इस तरह की दृश्य-योजना काश्मीरी, मैथिली एवं + बंगाली वाचनाओं के पाठ में प्राप्त

नहीं होती है ।) एवमेव, (ख) तीन नवीन श्लोकों का क्षेपक प्राप्त होता है । जिनमें 1. *एते सद्यः प्रचितकुसुमा0*, 2. *न केवलं रूपेण बाला0* तथा 3. *प्रभुत्वमेव0* श्लोक ध्यानास्पद है । (क्योंकि ये तीन श्लोक भी काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली जैसी तीनों वाचनाओं में कहीं पर भी नहीं मिलते हैं ।) अतः इन एकादश पाण्डुलिपियों की "मूलादर्श-प्रति" तो कोई एक समान ही होगी । (अतः इन एकादश प्रतियों को "समान-वंशज प्रतियाँ" कही जायेगी । उस मूलादर्श-प्रति का पाठ हमारे लिए अनुमान-गम्य होगा । उस मूलादर्श-प्रति के अनुमानगम्य बृहत्पाठ को हमने "समीक्षित पाठ" के रूप में तैयार करने का उपक्रम किया है ।।)[इन 75 पाण्डुलिपियों के पाठभेदों को परिशिष्ट 2 से 5 में रखे हैं ।]

इन (पूर्वोक्त) दो प्रधान यूथों की पृथक्-पृथक् वंशज प्रतियाँ बनाने का प्रघात भी कालान्तर में शूरु हुआ होगा ऐसा दिखता है । किन्तु, उन (एकादश) में प्रवाहित हुआ वह बृहत्पाठ बाद में यथावत् सुरक्षित नहीं रहा है । अब तो, उस पूर्वोक्त परम्परागत बृहत्पाठ के कुछ स्थानों में श्लोक-क्रमादि में परिवर्तनादि किये गये हैं एवं उनमें से दो दृश्यों की कटौती भी की गई है । इस संक्षेपीकरण के वाद जो आकारित हुआ "लघुपाठ" है, वह बहुसंख्यक पाण्डुलिपियों में मिलता है । पृथक्तया आकारित हुए इस लघुपाठ वाली 53 पाण्डुलिपियों का हम (क-2) तथा (ख-2) जैसे दो उपविभागों में बटवारा करेंगे । इन दो उप-विभागों में से, (क-2) में प्राप्त होनेवाली प्रतियों की संख्या 15 है, तथा दूसरे (ख-2) विभाग में 36 प्रतियाँ हैं । इन प्रतियों के अलावा हमने 13 पाण्डुलिपियाँ ऐसी प्राप्त की है कि जिनमें इस नाटक की केवल प्राकृत उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है ।

इस तरह से बृहत्पाठ वाली (क-1) यूथ की 5 + (ख-1) यूथ की 6, + लघुपाठ वाली (क-2) यूथ की 15 + लघुपाठ वाली (ख-2) यूथ की 36 + प्राकृतविवृति या प्राकृतच्छायानुवाद वाली 13 = 75 पाण्डुलिपियों का योग होता है । अब, उपर्युक्त विभाजन के अनुसार <u>इन सभी 75 पाण्डुलिपियों का वंशवृक्ष</u> दिया जायेगाः--

कालिदास-प्रणीत मूल पाठ (जो कालग्रस्त हुआ है)

↓

(इस में अलग अलग प्रान्तों में आकारित हुई पाँच वाचनाएँ । 1. काश्मीरी, 2. मैथिली, 3. बंगाली,

4. दाक्षिणात्य एवं 5. देवनागरी लिपि में लिखी गई पाण्डुलिपियों में संचरित पाँच वाचनाएँ ।)

↓

पुरोगामिनी काश्मीरी-मैथिली-बंगाली जैसी तीन वाचनाओं के पाठों में से कतिपय पाठभेदों का

आहरण करने के साथ, नवीन पाठ-योजना वाला

देवनागरी वाचना का संमिश्रित बृहत्पाठ ।

(अनुमानगम्य मूलादर्श-प्रति)

↓

उपलब्ध देवनागरी वाचना का प्राचीनतम बृहत्पाठ

(जिसकी प्रतिनिधिभूत 11 पाण्डुलिपियाँ)

↓

उपर्युक्त बृहत्पाठ का दो यूथों में बटवारा

↓

(क-1) यूथ की पाण्डुलिपियाँ

[जिसमें 1 से 5 क्रमांक की प्रतियाँ]

↓

(क-2) के यूथ की संक्षिप्त पाठवाली 15 प्रतियाँ

[इसमें 12 से 26 क्रमांक की पाण्डुलिपियाँ]

(ख-1) यूथ की पाण्डुलिपियाँ

[जिसमें 6 से 11 क्रमांक की प्रतियाँ]

↓

(ख-2) यूथ की संक्षिप्ततर पाठ की 38 प्रतियाँ

[इसमें 27 से 62 क्रमांक की पाण्डुलिपियाँ]

[6]

उपर्युक्त वंशवृक्ष को निर्धारित करने में हेतुभूत परामर्शः (Logic for the proposed genealogical tree of manuscripts) प्राप्त की गई कुल पीचत्तर पाण्डुलिपियाँ देवनागरी लिपि में ही लिखित है, तथापि उनमें इस नाटक का कोई मूलगामी विशुद्ध पाठ नहीं है। कहने का तात्पर्य ऐसा है कि कवि कालिदास के समय में तो ब्राह्मी-लिपि का प्रचलन था। उस ब्राह्मीलिपि-निबद्ध मूलपाठ की धारा से ही निकली हो ऐसी परिशुद्ध देवनागरी वाचना का यह पाठ नहीं है। मैंने इस नाटक की काश्मीरी वाचना का समीक्षित पाठ सम्पादित किया है, जिसका प्रकाशन राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली (2018) से हुआ है। उसकी प्रस्तावना में मैंने इस नाटक की पाँचों वाचनाओं के प्रादुर्भाव का पौर्वापर्य निर्धारित किया है। उस परामर्श के अनुसार पहले काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं के पाठ क्रमशः आविर्भूत हुए थे। तथा वर्तमान देवनागरी वाचना के पाठ का आविर्भाव चौथे (या पाँचवे) क्रम पर हुआ होगा। काश्मीरी-आदि तीन वाचनाओं के बाद ही वर्तमान देवनागरी वाचना निकली है- ऐसा मानने का कारण यह है कि इस देवनागरी पाठ में काश्मीरी -आदि तीनों वाचनाओं के पाठान्तरों का अनेकत्र समाहरण किया गया है। उदाहरणतया, तृतीयांक के आरम्भ में दुष्यन्त की कामयमानावस्था को प्रदर्शित करने वाले तीन श्लोक (1. अद्यापि नूनं हरकोपवह्नि0, 2. वृथैव संकल्पशतैः0, 3. संमीलन्ति न तावद्बन्धनकोशाः0) मैथिली वाचना से लिए गये है। ये तीन श्लोक पहले काश्मीरी वाचना में नहीं थे। तथा यहीं पर जो शशिकरविशदानि0 वाला श्लोक है वह बंगाली वाचना में से लिया गया है। यह श्लोक इस बंगाली वाचना से पहले काश्मीरी एवं मैथिली में नहीं मिलता था। उसी तरह से गद्य वाक्यों का समाहरण भी दिखाया जा सकता है:- दुष्यन्त ने प्रियंवदा-अनसूया को "चित्रा-विशाखे शशांकलेखामनुवर्तेते" कहा है, जो वाक्य मूलतः काश्मीरी वाचना में से देवनागरी वाचना में लाया गया है। तथा शकुन्तला के लिए "लब्धोषधा उपशमं गमिष्यति" ऐसा जो कहा है, और उसके लिए (देवनागरी की कतिपय पाण्डुलिपियों में) मेघनादाहता मयूरी-का उपमान रखा गया है, वह काश्मीरी वाचना में से लिया गया है। इन उदाहरणों से इस देवनागरी वाचना का पाठ संमिश्रित किया गया पाठ है ऐसा सिद्ध हो रहा है। किन्तु यहाँ अनतिचिरेण यह कहना भी बहुत अनिवार्य है कि मैंने एकत्र की इन 75 पाण्डुलिपिओं में देवनागरी वाचना का जो पाठ है वह संमिश्रित पाठ होने के साथ साथ, अपनी कुछ निजी विशेषताएँ भी रखता है। देवनागरी वाचना के इस बृहत्पाठ का वैशिष्ट्य इस बात में है कि उपर्युक्त दोनों दृश्यों को (क) *अपरिक्षतकोमलस्य यावत्0* एवं (ख) *इदमुपकृतिमबले सुरभि मुखं* 0 जैसे दो श्लोकों के बीच में रखे गये हैं। इस तरह की पाठ-योजना काश्मीरी-मैथिली-बंगाली वाचनाओं के बृहत्पाठ में नहीं मिलती है। बल्कि ऐसा कहना चाहिए कि उन तीन पुरोगामिनी वाचनाओं के पाठों में *अपरिक्षतकोमलस्य0* श्लोक मिलता ही नहीं है ॥

देवनागरी वाचना के बृहत्पाठ की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें तीन नवीन श्लोकों का प्रक्षेप प्राप्त हो रहा है, जो पुरोगामिनी तीन (काश्मीरी-मैथिली-बंगाली) वाचनाओं में कहीं पर मिलते नहीं हैं। ये श्लोक हैं :- (1) *एते सद्यः प्रचितकुसमा रिक्तकोशा0*- श्लो.-6, (2) *न केवलं रूपेण बाला व्रीडिता0*- श्लोक.21, तथा (3) *प्रभुत्वम् एवास्खलिताभितापम्0*- श्लो.22। इन तीन श्लोकों की प्राप्ति बृहत्पाठ वाली 11 पाण्डुलिपियों में से मुख्यतया प्रथम (क-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में होती है। ये श्लोक कुत्रचित् (ख-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में भी मिलते हैं।

*** *** *** *** *** *** *** ***

बृहत्पाठ वाली 11 देवनागरी पाण्डुलिपियों का भेदक तत्त्व भी ध्यातव्य है :- (क-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में राजा ने जब शकुन्तला की संतप्तावस्था के बारे में प्रश्न पूछा तब सहेलियों ने "*लब्धोषधा उपशमं गमिष्यति*" ऐसा कहा है, और उसके बाद "सलज्जं तिष्ठति" रंगसूचना से शकुन्तला खडी हो जाती है। एवं राजा ने उसके लज्जा के भावों का आलेखन करने के लिए एक श्लोक भी प्रस्तुत किया है । तथा, उस समय पास में खडी शकुन्तला अपने हाथ में रहे कमलपुष्प के पत्रों का परिगणन करने का अभिनय करती है । (इस दृश्य में, कुमारसम्भव के षष्ठ सर्ग की पंक्ति " एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी । लीलांकमलपत्राणि गणयामास पार्वती" (6-84) का प्रतिध्वनि सुनाई पडता है ।)

किन्तु (ख-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में "*लब्धोषधा उपशमं गमिष्यति*" जैसा वाक्य नहीं है । इन 6 पाण्डुलिपियों में तो राजा ने जैसा ही शकुन्तला के साथ उसी शिलातल पर आसन ग्रहण किया, वैसे ही सीधी दो रंगसूचनाएँ दी गई हैं कि "*राजा उपविशति । सलज्जं तिष्ठति ।*" अर्थात् इस (ख-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में शकुन्तला की लज्जा को किसी श्लोक एवं किसी दृश्य-विशेष के साथ, अभिनय के माध्यम से, प्रस्तुत नहीं किया गया है ।

*** *** *** ***

देवनागरी वाचना के बृहत्पाठ में संक्षेपीकरण करके कालान्तर में दो तरह के संक्षिप्त पाठ बने हैं- ऐसा प्रतीत होता है । यद्यपि इन दोनों संक्षिप्त पाठ भिन्न भिन्न वंशों में से आकारित किये गये है । जैसे कि, (क-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में संक्षेप करके (क-2) यूथ की पाण्डुलिपियाँ बनाई गई है । (इस यूथ में 12 से 26 क्रमांक की पाण्डुलिपियों का परिगणन किया गया है ।) तथा (ख-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में संक्षेप करके (ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियाँ बनाई गई है । (जिसमें 27 से 62 क्रमांक की पाण्डुलिपियों का परिगणन किया गया है ।) क्योंकि जिस तरह से (क-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में "*लब्धोषधा उपशमं गमिष्यति*" वाक्य है, उसी तरह का वाक्य इन (क-2) यूथ की पाण्डुलिपियों में भी उपलब्ध होता है । इससे सिद्ध होता है कि (क-2) यूथ की पाण्डुलिपियाँ (क-1) यूथ की पाण्डुलिपियों के वंश की है । (यहाँ एक विशेष बिन्दु जोडना आवश्यक है कि इस यूथ की 12 से 22 क्रमांक वाली पाण्डुलिपियों में न केवल "*लब्धोषधा उपशमं गमिष्यति*" वाक्य ही है, किन्तु इन में शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमानवाक्य भी अधिकतया दाखिल हुआ प्राप्त होता है ।) एवमेव, जिस तरह से (ख-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में "*लब्धोषधा उपशमं गमिष्यति*" वाक्य नहीं मिलता है, उसी तरह से इन (ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियों में भी वह वाक्य नहीं मिलता है । इससे सिद्ध होता है कि (ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियाँ (ख-1) यूथ की पाण्डुलिपियों के वंश में पैदा हुई है ।

इन दो (क-2) एवं (ख-2) उप-विभागों की पाण्डुलिपियों में संक्षिप्त पाठ मिलता है यह एक हकीकत है । क्योंकि इन दोनों में (1) दुष्यन्त के द्वारा शकुन्तला के हाथ में मृणाल-वलय पहनाने का प्रसंग, एवं (2) पुष्परज से कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्र का दुष्यन्त के द्वारा प्रमार्जन करने का प्रसंग, इन दोनों को हटाये गये हैं । लेकिन इन दो संक्षिप्त किये गये पाठों में एक अन्तर्निहित भेद भी है, जो ध्यातव्य है । जैसे कि, (क-2) यूथ की संक्षिप्त पाठ वाली पाण्डुलिपियों में तृतीयांक के आरम्भ में दुष्यन्त के द्वारा कामयमानावस्था का अभिनय करने के लिए जिन श्लोकों को रखे गये है, उनमें प्रायः कटौती नहीं की गई है । परन्तु (ख-2) यूथ की पाणडुलिपियों में उस कामयमाना-वस्था का अभिनय करने में उपकारक सिद्ध होने वाले श्लोकों को भी हटाने की प्रणालि शूरु हुई है । जिसके कारण (क-2) यूथ की पाण्डुलिपियों के तृतीयांक में 31 से 28 श्लोकों वाला कलेवर मिलता है । तथा (ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियों में वह श्लोक-संख्या कम होते होते अन्त में 23 या 24 पर जा कर रुकती है । इस तरह से (ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियों में देवनागरी वाचना का संक्षिप्ततर पाठ उपलब्ध होता है । बस, यही अन्तिम चरण पर आये हुए संक्षिप्ततर पाठ को आज हमने पठन-पाठन में स्वीकार लिया है ।।

इस तरह से देखा जाय तो प्रथम स्तर पर, देवनागरी वाचना का बृहत्पाठ खडा है । दूसरे स्तर पर, उसमें से (तृतीयांक के) उपरि निर्दिष्ट प्रेमसहचार के दो दृश्यों को हटाये गये (जिसके कारण आकारित हुआ (क-2) पाण्डुलिपियों का संक्षिप्त पाठ) । तत्पश्चात् तीसरे स्तर पर, तृतीयांक के आरम्भ में कामयमानावस्था के अभिनयन में उपकारक होने वाले श्लोकों की भी कटौती की गई । (तथा शकुन्तला को भी अस्वाभाविक रूप से क्षणार्ध में, यानि बिजली के झटके की तरह, खडी की

जाती है । इस तरह से (ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियों मे प्रवाहित हुआ संक्षिप्ततर पाठ आकारित हुआ है । इन (क-2) एवं (ख-2) की पाण्डुलिपियों में जो दो तरह की कटौती हुई है, और उसके बाद जो अवशिष्ट रह गया संक्षिप्ततर पाठ है, उसमें शकुन्तला का प्रेम केवल सखीयों के अधीन ही हो गया है- ऐसी परिस्थिति का निर्माण हुआ है । इसमें प्रेम की कोई सुन्दरता न रही, न रही प्रेम की कोई गरिमा ।।

[7]

कुसुमशयना शकुन्तला के स्थित्यन्तर :– (Various changes in the sleeping position of the heroin, Shakuntala) कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के तृतीयांक में नायक एवं नायिका का गान्धर्व-विवाह निरूपित किया गया है । किन्तु दो हजार वर्षों की कालावधि में इस अंक के पाठ्यांश में बहुविध परिवर्तन आते रहे हैं । अज्ञात नटमण्डलियों ने भी इसमें वार वार मंचनलक्ष्यी रंगसूचनाओं में तोड-जोड की है । इन मंचनलक्ष्यी परिवर्तनों की परम्परा को जानने से पहले, उपर्युक्त गान्धर्व-विवाह की पूर्वभूमिका के रूप में रखे गये "कुसुमशयना शकुन्तला" के दृश्य की कवि-संकल्पित मंचन-योजना मूल में क्या रही होगी ? वह विचारणीय है । क्योंकि इस कवि-संकल्पित दृश्य-योजना को जाने विना, परवर्ती काल में आविर्भूत हुई परिनर्तन-यात्रा हमारी पकड में नहीं आयेगी । अतः कुसुमशयना शकुन्तला के दृश्य का मंचन मूल में कैसे करना अपेक्षित था ? यह अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर सोचेंगे । अंक के आरम्भ में ही कहा गया है कि नायिका शकुन्तला मदनदाह-पीडिता है । सखी प्रियंवदा उसके शरीरदाह के निर्वापण (=शीतलता प्रदान करने) के लिए उशीरानुलेपन ले जा रही है । कण्व मुनि का शिष्य भी बताता है कि वडी सावधानी से शकुन्तला की शुश्रूषा करनी चाहिए, क्योंकि वह कण्व मुनि का उच्छ्वास रूप है । इस दृश्य का आरम्भ मध्याह्न वेला में हुआ है । एक ओर राजा दुष्यन्त कामयमानावस्था का अभिनय करता हुआ रंगमंच पर आता है । तो दूसरी ओर, रंगमंच पर कुसुमास्तरण वाले शिलापट्ट पर लेटी हुई शकुन्तला का प्रवेश होता है । दोनों सहेलिया उसके दहिने-बायें बैठी हैं और लेटी हुई शकुन्तला को नलिनी-दल से पवन झल रही हैं । किन्तु शकुन्तला को आसपास की परिस्थिति का कुछ भान नहीं है । जिसको देख कर प्रियंवदा ने कहा है कि- आज दुष्यन्त के साथ उसका मिलन होना बहुत आवश्यक है । "अक्षमेयं कालहरणस्य" । (दुष्यन्त के विना शकुन्तला अधिक समय जीवित नहीं रह सकेगी ।)

इसके बाद सहेलियों के सुझाव पर शकुन्तला ने मदनलेख लिख कर, उन दोनों को पढ कर सुनाया है । इस समय शकुन्तला को लेटे रह कर ही मदनलेख लिखना है । तत्पश्चात् उस मदनलेख के शव्दों को सुन कर, राजा रंगमंच पर प्रकट होता है और अनसूया की विज्ञप्ति पर, शकुन्तला जिस पर लेटी है, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करता है । जव राजा उसके साथ में बैठते हैं तब भी शकुन्तला को लेटी ही रहना है । अन्त में, दोनों सहेलियों के चले जाने के बाद, दुष्यन्त शकुन्तला के सामने उसको नलिनीदल का पवन झलने का एवं पाद-संवाहन करने का प्रस्ताव रखे, तब तक शकुन्तला को लेटे ही रहना अनिवार्य है । इस तरह की दृश्य-योजना का समर्थन करनेवाला निम्नोक्त श्लोक यहाँ देखना बहुत जरूरी है :--

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्,
संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः ।
अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ,
संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते[8] ।।

यहाँ, तृतीय पाद में कहा गया है कि शकुन्तला के साथ में बैठा हुआ दुष्यन्त (लेटी हुई) शकुन्तला के पद्मताम्रवर्णी चरणों को अपनी गोदी में लेकर, उसका संवाहन करने के लिए तत्पर है, उत्सुक है ।

स्वयं कालिदास के द्वारा लिखा गया यह पाठ जब नटमण्डलियों के हाथ में पहुँचता है तब उसमें मंचनलक्ष्यी परिवर्तन होना शूरु हो गया है । भूतकाल के सूत्रधारों ने लेटी हुई शकुन्तला का दृश्य अभिनीत करवाने का मौका मिलने पर, उन्होंने उसको पहले प्रदूषित ही किया । जैसा कि, सुदूर अतीत में प्रचलित बने काश्मीरी-मैथिली-बंगाली पाठों को हम

---

[8] इस पद्य के तीसरे-चौथे पाद का जो पदक्रम है वह काश्मीरी, मैथिली एवं वंगाली वाचनाओं के पाठ में उपलब्ध होता है । लेकिन कालान्तर में, उसको देवनागरी तथा दाक्षिणात्य पाठों में परिवर्तित किया गया है ।

देखते हैं तो मालूम होता है कि शकुन्तला की लेटी हुई अवस्था का वहुत दुरुपयोग हुआ है। दुष्यन्त के मुख से शकुन्तला के साथ (रंगमंच पर) सीधे सहशयन की माँग करवाई जाती है। (द्रष्टव्य.हैः- मोक्ष्यामि । कदा । यदा सुरतरसज्ञो भविष्यामि, अपराधमिम्0, न एतावता तुष्टिर्भविष्यति, अप्यौत्सुक्ये महति न वरप्रार्थना0, रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना यास्यति पुनः0 इत्यादि गद्य वाक्य एवं पद्य श्लोक)। यह प्रथम स्तर का प्रदूषण है।।

द्वितीय स्तर पर, परवर्ती काल के अन्य रंगकर्मियों ने शकुन्तला की लम्वे समय तक लेटी हुई अवस्था का समय कुछ कम करने का उपक्रम शूरु किया। उनके द्वारा, मदनलेख लिखने के मौके पर शकुन्तला को ("उपविष्टा चिन्तयति" जैसी नयी रंगसूचना जोड कर) शिलातल पर विठाई जाती है। तथा मदनलेख के शव्दों को सुन कर, जव राजा दुष्यन्त रंगमंच पर प्रकट होता है तब उसी क्षण का फायदा उठाते हुए, उन रंगकर्मियों ने उसको लज्जा के साथ खडी भी कर दी है। किन्तु यहाँ ध्यातव्य है कि शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने की स्थिति को आकारित करने के लिए भी चार – पाँच तरह के पाठ-परिवर्तन किये गये हैं- ऐसा (इन एकत्र की गई पीचत्तर पाण्डुलिपियों को देखने से) मालूम होता है।

तद्यथा –

(क) देवनागरी वाचना का वृहत्पाठ जिन प्रथम (क-1) यूथ की पाँच पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ है उनमें शकुन्तला के मदनलेख के शव्दों को सुन कर राजा उन सहेलियों के सामने प्रकट होता है। अनसूया अविलम्व से सामने आये शकुन्तला के मनोरथ (यानि दुष्यन्त) का स्वागत करती है और उसी शिलातल पर राजा को आसन ग्रहण करने का कहती है। वहाँ पर, पहले तो शकुन्तला के शरीरसंताप के वारे में प्रश्न करता है। सखियों ने वताया कि अव औषधि उपलव्ध हो जाने पर वह शरीरताप शान्त हो जायेगा। उसके वाद, शकुन्तला लज्जा के साथ खडी होती है। इस शरमिंदी हो रही नायिका का निरूपण करनेवाला श्लोक भी यहां दिया गया है। तथा, उस क्षण पास में खडी शकुन्तला ने अपने करकमल के पत्रों, (यानि अंगुलियों) की गिनती करने का अभिनय किया है, और वह नम्रमुखी खडी रहती है। (कुछ पाण्डुलिपिओं के अनुसार, शकुन्तला ने अपने हाथ में रखे कमल के पत्रों की गिनती की है।) यहाँ वृहत्पाठ के रंगकर्मियों ने "सलज्जं तिष्ठति" की रंगसूचना को यथार्थतया अभिनीत करवाने के लिए इस नवीन दृश्य की परिकल्पना की होगी, और उसका प्रक्षेप किया होगा।

[इस प्रसंग का पाठ्यांश अवलोनीय हैः--

राजा – *(सहसोपसृत्य)*

तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव ।
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथाहि कुमुद्वतीं दिवसः ।। 3 – 19 ।।

सख्यौ – *(सहर्षम्) सागदं अविलंविणो मणोरहस्स जधा चिन्तिदफलस्स । (स्वागतं यथा अविलम्विनः मनोरथस्य यथा चिन्तितफलस्य ।)*

अनुसूया – *इदो सिलातलैकदेसे अणुगिण्हदु वयस्सो । (इतः शिलातलैकदेशे अनुगृह्णातु वयस्यः)*

राजा – *(उपविष्टः) अये, सह्यो भवत्सख्याः शरीरपरितापः ?।*

सख्यौ – *(सस्मितम्) लद्धोसहो संपयं उवसमं गमिस्सदि । (लब्धौषधः साम्प्रतमुपशमं गमिष्यति ।)*

(शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।)

राजा – न केवलं रूपेण वाला, व्रीडितेनापि मनोहरति ममेयम् ।

आवर्तितचारुमुखी, सलीलगत्या शनैः प्रदेशिन्या ।
गणयति करकमलस्य स्वनयनसदृशानि पत्राणि ।। 3 – 22 ।।[9]

(हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर, पाटण- पाण्डुलिपि क्रमांक 16630)

---

[9] इस श्लोक में आर्या छन्द का प्रयोग है। जैसे कि, आवर्तित । चारुमु । खी, । सलील । गत्या । शनैः प्र । देशि । न्या । गणयति । करकम । लस्य । स्वनयन । सदृशा । नि । पत्राणि ।। (इस आर्या की सही पहचान देने के लिए मैं डॉ. श्रीमनसुखभाई मोलिया जी, राजकोट का आभारी हूँ।)

इस दृश्य का विस्तार वहाँ तक है कि बाद में, शकुन्तला ने प्रियंवदा को पास में बुला कर उसके कर्णपटल में कुछ कहा है। इससे नायिका शकुन्तला ने जो आक्षेपयुक्त शब्दों वाला मदनलेख लिखा था, उसकी सखीमुख से क्षमायाचना की है। उसके प्रतिभाव में दुष्यन्त ने भी कहा है कि शकुन्तला ने मुझे उनका अपना मान कर ही ऐसा लिखा था ! इस संवाद का पाठ्यांश भी द्रष्टव्य हैः---

शकुन्तला – प्रियंवदे, इदो दाव। (प्रियंवदे, इतस्तावत्।)

प्रियंवदा – (उपसृत्य) इय म्हि। (इयमस्मि।)

शकुन्तला – (कर्णे एवमेव कथयति।)

प्रियंवदा – महाभाय, सउंतला विणावेदि महारायं उद्दिसिय अणभिदाए मंतिदं तुम्हे मरसिदव्वं। (महाभाग, शकुन्तला विज्ञापयति, महाराजम् उद्दिश्य अनभिज्ञतया मन्त्रितं युष्माभिर्मर्षितव्यम्।)

राजा – अस्मदभिन्नतया सखी एवं व्याहरति।

प्रभुत्वमेवास्खलिताभितापं मयि प्रयोक्तुं चिरमर्हतीयम्।
मनोरथप्रार्थितसंप्रयोगमात्मानमेवं किमुताभिधातुम्॥ 3 – 22॥
(राजा उपविष्टः।)]

(ख) लेकिन बृहत्पाठ वाली अन्य (ख-1) यूथ की छह पाण्डुलिपियों में उपर्युक्त (नवीन) दृश्य की प्राप्ति नहीं होती है। वहाँ तो, लज्जा के साथ शकुन्तला खडी हो जाने से पूर्व, दोनों सखियों ने जब बताया कि "लब्धोषधा उपशमं गमिष्यति।" उसके बाद, शकुन्तला को केवल लज्जा के साथ खडी होती हुई कही है। (इन पाण्डुलिपियों के क्रमांक इस तरह के हैः—1. आनन्दाश्रम 52-517, 2. पाटण की 6654, 3. जोधपुर की 39447, 4. भरतपुर की 7578, 5. वाराणसी की 87 तथा वृन्दावन की 6370.)

(ग) उपर्युक्त प्रस्तुति के अलावा दूसरे तरह की प्रस्तुति (क-2) यूथ की पाण्डुलिपियों में देखने को मिलती है। इनमें, शिलातल पर बैठी हुई शकुन्तला को खडी करने के लिए "लब्धोषधा उपशमं गमिष्यति।" वाक्य के उपरान्त शकुन्तला को मेघनादाहता मयूरी का उपमान देकर, लज्जा के साथ खडी होती हुई कही गई है। जैसे कि, "अनसूया – पिअंवदे, पेक्ख पेक्ख, मेहवादाहदं मिअगिह्मिमोरीं निमिस्संतमित्तकेन पच्चागदजीविअं पिअसहीं। (प्रियंवदे, पश्य पश्य। मेघवाताहतां मृतग्रीष्ममयूरीं निमिषमात्रकेन प्रत्यागतजीवितां प्रियसखीम्।)" (इन पाण्डुलिपियों के क्रमांक हैः- 1. चंडीगढ की 5448, 2. बीकानेर की 193, 3. डेक्कन की 10948, 4. बी. एल. इन्स्टीट्युट की 3964, 5. कोटा की 1322, 6. कोटा की 5133, 7. जयपुर की 1223, 8. जयपुर की 1224, 9. उज्जयिनी की 5875, 10. गंगानाथ झा की 49352, 11. गंगानाथ झा की 2851, 12. उज्जयिनी की 15225, 13. उज्जयिनी की 1374, 14. डेक्कन की 10730, 15. पेन्सिल्वा-निया की 380-54.)

(घ) चौथे यानि (ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियों में "लब्धोषधा उपशमं0" इत्यादि, एवं "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान इत्यादि सब हटा कर, एक साथ में दो रंगसूचनाएँ दी जाती है। जैसे कि,
"राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" इस (ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियों में संक्षिप्ततर पाठ बनाया गया है, अतः वहाँ नायक को सीधे ही बिठाया जाता है, और बिना किसी गद्य वाक्य का, बिना किसी उपमान का प्रयोग किये, बिजली के झटके के साथ शकुन्तला को खडी की जाती है। इस तरह की प्रस्तुति में किसी भी तरह की नाटकीयता नहीं है॥ (ऐसी पाण्डुलिपियों की ही संख्या सर्वाधिक है और वे सभी बहुशः परवर्ती काल में, (यानि दो सो वर्ष पहले ही) लिखी गई हैं।)

(ङ) किसी अन्य रंगकर्मियों ने बैठी हुई शकुन्तला को खडी करने की जल्दबाजी नहीं की। उन लोगों ने, अनसूया ने जब राजा को शिलातल पर आसन ग्रहण करने की विज्ञप्ति की है, तब वहाँ रंगसूचना दी है कि- "शकुन्तला पादौ अपसारयति"। यानि बैठी हुई शकुन्तला ने अपने दोनों पाँव सिकुड कर, राजा को शिलातल पर बैठने के लिए थोडी जगह बनाई। जिसके कारण अब प्रेक्षकों को, कुछ क्षणों के लिए वे दोनों शिलातल पर साथ में बैठे हुए दिखाई देंगे। ऐसे दृश्य का निरूपण कुल मिला कर पाँच पाण्डुलिपियों में देखा जाता है। (जैसे कि, सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, उज्जयिनी की 5875, 15225, 1374 क्रमांकवाली, गंगानाथ रिसर्च इन्स्टीट्युट, प्रयागराज की 49352 क्रमांकवाली एवं डेक्कन कॉलेज, पूणें की 10730 क्रमांक वाली पाण्डुलिपियाँ द्रष्टव्य हैं।)

*** * * ***   *** * * ***   *** * * ***   *** * * ***   *** * * ***   *** * * ***

तृतीय अंक के आरम्भ में, शकुन्तला का प्रवेश कुसुमास्तरण पर लेटी हुई अवस्था में हुआ है ऐसा कहा गया है। कालान्तर में, नटमण्डलियों ने उसी शयनावस्था का समय घटा कर, उसमें उपर्युक्त पञ्चविध स्थित्यन्तर दिखायें हैं। आगे यह देखना भी जरूरी है कि लज्जा के साथ पास में खडी रही उस शकुन्तला को अब दुष्यन्त (जो स्वयं शिलातल पर बैठा हुआ है, वह) कैसे और किन शब्दों में उसके पाद-संवाहन का प्रस्ताव करेगा ?। इस चर्चा के आरम्भ में हमने देखा है कवि-संकल्पित योजना के अनुसार "कुसुमशयना शकुन्तला" के दृश्य की प्रस्तुति में बहुत लम्बे समय तक शकुन्तला को लेटे ही रहना है । दोनों सहेलियों के चले जाने के बाद, दुष्यन्त "अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ" शब्दों के साथ शकुन्तला का पाद-संवाहन करने का जो प्रस्ताव रखता है, वह इसी लिए सुसंगत है कि शकुन्तला लेटी हुई अवस्था में निरन्तर बनी रही है । लेकिन परवर्ती काल के रंगकर्मियों ने जब शकुन्तला को मदनलेख लिखने के निमित्त से बैठी कर दी है और बाद में लज्जा के साथ, उस (शिलातल पर) बैठे हुए दुष्यन्त के सामने खडी भी कर दी है, तब यह कैसे पादसंवाहन करने का प्रस्ताव कर सकेगा ? । इस विसंगति को मिटाने के लिए, परवर्ती काल के रंगकर्मिओं ने उस (काश्मीरी-मैथिली-बंगाली वाचनाओं के) परम्परागत श्लोक के पदक्रम को बदल दिया है । जैसे कि, "अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ, संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते ।।" (काश्मीरी वाचना में 3-20) के स्थान पर, पाठभेद करके (सभी देवनागरी पाण्डुलिपियों में) "अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते, संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ" ऐसी शब्दानुपूर्वी बना दी है !।

किन्तु इस नवीन पाठान्तर के कारण, दुष्यन्त के शब्दों का अर्थ अब ऐसा होगा कि (शिलातल पर बैठा हुआ) दुष्यन्त अपने पास में खडी रही शकुन्तला को उठा कर अपनी गोदी में पहले बिठायेगा और उसके बाद, वह उसका पाद-संवाहन करेगा !। क्योंकि अब (नवीन पाठभेद के अनुसार) "निधाय" जैसे ल्यबन्त कृदन्त के पीछे (संनिधि में) "करभोरु" ऐसा सम्बोधन पद आया है, अतः "त्वाम्" (कर्म-वाचक) पद को अध्याहृत पद के रूप में लेना होगा । जिसका अन्वय होगाः- "हे करभोरु ! (मदीये) अंके त्वां (शकुन्तलां) निधाय, ते (तव) पद्मताम्रौ चरणौ यथासुखं संवाहयामि । (अर्थात्- हे करभोरु, मेरी गोदी में तुझे बिठा कर, तेरे पद्मताम्र- वर्ण वाले चरणों का संवाहन कर दूँ, जो तुम्हें सुखकर हो)" ।

*** * * ***   *** * * ***

उपर्युक्त "किं शीतलैः क्लमविनोदिभिः .... संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ।।" पद्य में रखे गये नये पाठभेद से एक नयी विसंगति भी आकारित हुई है- जिसकी ओर भी किसी भी पाठसम्पादक का अद्यावधि ध्यान नहीं गया है । शकुन्तला को एक बार "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से लज्जा के साथ खडी हुई घोषित तो कर दी है । किन्तु बाद में, उपरि निर्दिष्ट नये पाठभेद वाले शब्दों से, दुष्यन्त ने उसको अपनी गोदी में बिठा कर पाद-संवाहन करने का जब प्रस्ताव रखा तब, उसको सुन कर शकुन्तला बोलती है कि- "न माननीयेष्वात्मानम् अपराधयिष्ये" । (आप जैसे माननीय व्यक्ति के पास मैं मेरा पाद-संवाहन करवा कर अपराधी बनना नहीं चाहती हूँ ।) इसी वाक्य के बाद, जो एक रंगसूचना (इन सभी 75 पाण्डुलिपियों में) दी गई है, वह इस प्रकार की हैः- "उत्थाय गन्तुम् इच्छति" । (यानि शकुन्तला उठ कर वहाँ से चले जाने की इच्छा कर रही है ।) स्पष्टतया यह रंगसूचना पूर्वापर सन्दर्भ में विसंगति पैदा कर रही है । क्योंकि पहले जिस शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी की गई है, वह अब उठ कर कैसे चले जाने की इच्छा करेगी ?। **निष्कर्षः**-- इस तरह से, इन 75 पाण्डुलिपियों में संचरित हुए देवनागरी वाचना के पाठ की परिवर्तन-यात्रा का उद्घाटन होने से इस (नाटक के) तृतीयांक की अन्धकारग्रस्त मंचन-यात्रा पर पहली बार प्रकाश पड रहा है । एवमेव, कवि-संकल्पित मूल दृश्य की अभिनेयता कितनी दुष्कर सिद्ध हुई है ? उसका अंदाजा लगाया जा सकता है ।।

[8]

पूर्वोक्त दो समस्याओं का समाधान (Answers to the said problems) :— अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रचलित पाठ में अन्तर्निहित दो समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए, खण्ड [1] तथा खण्ड [2] में, इस अनुसन्धान कार्य को प्रवर्तित करने का कारण कहा गया था । वहाँ बताया है कि आधुनिक काल के संस्करणों में एकरूपता नहीं हैं । जैसे कि, खण्ड [1] में

वताया है कि ओटो बोटलिंग, मोनियर विलियम्स, प्रोफे. पी.एन. पाटणकर, शारदारंजन राय, श्रीगौरीनाथ शास्त्री एवं पं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी आदि सम्पादकों ने अपने अपने सम्पादनों में, इस नाटक के तृतीयांक के आरम्भिक श्लोकों में से पृथक् पृथक् संख्या में श्लोकों को स्वीकारे हैं । एवञ्च, जिन श्लोकों को स्वीकारे हैं उनके उपस्थिति-क्रम में भी उनके सम्पादनों में एकरूपता नहीं हैं । यहाँ ध्यातव्य है कि यह समस्या आरम्भिक श्लोकों में ही केन्द्रित हुई है । ऐसा क्यूँ ? इस प्रश्न का समाधान (इन 75 पाण्डुलिपियों के परीक्षण के वाद) अव मिल जाता है । तद्यथा- देवनागरी वाचना के प्राचीनतम वृहत्पाठ में जब संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति शूरु हुई थी, तब सब से पहले तो नायक-नायिका के नैसर्गिक प्रेम-सहचार के दो दृश्यों को हटाये गये । तथा (क-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में मिलने वाला (शकुन्तला की लज्जा का निरूपण करने वाला) नया दाखिल किया गया दृश्य भी हटाया गया । तत्पश्चात् (तृतीयांक के आरम्भ में आने वाले=) दुष्यन्त की कामयमानावस्था का निरूपण करने वाले कतिपय श्लोक, (जो हकीकत में तो मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में पहले प्रक्षिप्त किये गये थे) उनमें से कतिपय को स्वीकारने या नहीं स्वीकारने के कारण उपर्युक्त सम्पादनों में एकरूपता नहीं दिखाई रही है । तथा उन स्वीकार्य या अस्वीकार्य वनें श्लोकों को किस क्रम में उपस्थित करना वह भी इन एकत्र की गई पाण्डुलिपियों में जिस तरह की वहुरूपता (विरूपता) प्रतिविम्बित हो रही है- उसी का परिणाम है । दुष्यन्त की कामयमानावस्था का निरूपण करने वाले सभी श्लोकों को यदि स्वीकार्य रखे जाते हैं तो वह 31, 30 या 29 श्लोकों वाला संक्षिप्त पाठ बन जाता है । तीसरे स्तर पर, जब इन आरम्भिक श्लोकों में ज्यादा कटौती की जाती है, तो 24 श्लोक वाला संक्षिप्ततर पाठ अन्त में बाकी रह जाता है, (जिसको हमने पठन-पाठन में "अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः" –न्याय से, अर्थात् बिना किसी अनुसन्धान किये, "कालिदास-प्रणीत मौलिक-पाठ" मान कर स्वीकार लिया है) । किन्तु इन दस्तावेजिय प्रमाणों से अब प्राप्त हुई दृष्टि से जब देखा जायेगा तो आधुनिक विद्वानों के संस्करणों में (तृतीयांक के केवल आरम्भिक श्लोकों में ही) क्यूँ एकरूपता नहीं है- उसका उत्तर मिल जाता है ।।

उसी तरह से, उपर्युक्त खण्ड [7] में जो परामर्श प्रस्तुत किया है उससे खण्ड [2] में वर्णित की गई क्षतियों में से अनेक का समाधान भी मिल जाता है । विशेषतया, "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी की गई शकुन्तला को "उत्थाय गन्तुमिच्छति" रंगसूचना से, "खडी होकर जाना चाहती है" ऐसा फिर से क्यूँ कहा गया है ? वह स्पष्ट होता है ।।

[9]

उपसंहार (Various observations & conclusion): -

1. वर्तमान में देवनागरी वाचना का जो लघुपाठ सुप्रचलित हुआ है, वह मौलिक नहीं है और आदिकाल से चला आ रहा पाठ भी नहीं है । यह लघुपाठ तो अनेक तरह की विकृतियों से युक्त है, एवं संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति के अन्तिम चरण पर आविष्कृत किया गया (तीसरा) पाठ है । केवल देवनागरी लिपि में लिखी गई इन 75 पाण्डुलिपियों का विश्लेषण करने से अब मालूम हो रहा है कि इस वाचना के त्रिविध (या चतुर्विध) पाठ इन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों में संचरित हुए हैं । अद्यावधि किसी भी संस्कृतानुरागी को यह ज्ञात ही नहीं है कि इस देवनागरी वाचना का पाठ कितने स्वरूपों वाला है । अन्तिम चरण पर बना, 190 श्लोक वाला, जिसके तृतीयांक में केवल 24 श्लोक मिलते हैं वैसा संक्षिप्ततर लघुपाठ ही सब को विदित हुआ है । (इसी संक्षिप्ततर देवनागरी पाठ पर राघव भट्ट ने अर्थद्योतनिका टीका लिखी है ।)
2. इन पाण्डुलिपियों में संचरित हुए त्रिविध पाठों की भेदक-रेखा कहाँ से खिंचनी चाहिए ? उसका परामर्श भी अभी तक देखने-सुनने में नहीं आया है । यदि इस देवनागरी वाचना के **त्रिविध रूपों** को सूत्र रूप से पहचानना चाहते हो तो वे इस तरह के हैः- 1. प्राचीनतम वृहत्पाठ । जिसमें तृतीयांक के तीन दृश्य ध्यानास्पद है । (क) मदनलेख को सुन कर रंगमंच पर उपस्थित हुए दुष्यन्त ने शकुन्तला के लज्जा के भावों का निरूपण किया है और उसके दौरान शकुन्तला ने अपने हाथ में रखे कमल पुष्प के पत्रों को (अथवा करकमल की अंगुलियों को) गिनने की चेष्टा का अभिनय किया है । तथा शकुन्तला ने जो आक्षेपयुक्त शब्दों वाला मदनलेख लिखा था उसकी सखीमुख से क्षमायाचना की है । जिसके प्रतिभाव में दुष्यन्त ने भी कहा है कि शकुन्तला ने मुझे उनका अपना मान कर ही ऐसा लिखा था ! (ख) इस अंक के मध्य भाग में, (गान्धर्वेण विवाहेन0 श्लोक के वाद), नैसर्गिक प्रेम-सहचार के दो दृश्य प्राप्त होते हैं । जिन में दुष्यन्त ने शकुन्तला के हाथ में मृणाल-वलय पहनाया है, और (ग) पुष्परज से कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्र का प्रमार्जन कर दिया है । इन तीन दृश्यों में से पहला दृश्य इस देवनागरी वाचना के पाठ की निजी विशेषता है । किन्तु (ख) एवं (ग) में उल्लिखित दो दृश्य काश्मीरी-

मैथिली-बंगाली पाठों में से लिये गये हैं ।। जिसके कारण, देवनागरी वाचना के इस बृहत्पाठ का तृतीयांक 42 श्लोक वाला बना है ।। 2. किन्तु जब अल्प समय में इस नाटक का मंचन करने का सोचा गया होगा तब पूर्वोक्त बृहत्पाठ में संक्षेपीकरण की प्रक्रिया शूरु हुई । इस मौके पर उपर्युक्त तीनों दृश्यों को हटाये गये । लेकिन दुष्यन्त की कामयमानावस्था का मंचन करवाने के लिए, तृतीयांक के आरम्भ में मालिनी के तट पर घुमता फिरता दुष्यन्त सात-आठ श्लोक बोलता है । जिसके कारण इस अंक का कलेवर 30 या 29 श्लोक वाला बनाया गया ।। 3. किन्तु कालक्रम से उन आरम्भिक श्लोकों को भी हटाये गये, जिसके कारण 24 श्लोक वाला संक्षिप्ततर पाठ बच गया । वर्तमान में सुप्रचलित बने इसी पाठ को मौलिक पाठ मान लेने की मुग्धता में साहित्यजगत् फसा हुआ है । व्यापक स्तर पर दस्तावेजीय प्रमाणों (=पाण्डुलिपियाँ एवं प्राचीनतर काल के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में मिलने वाले उद्धरणों) का गभीर अनुसन्धान किये विना, जो भी पाठ प्रकाशित होते रहे हैं, उन्होंने हमें कालिदास के मूल पाठ से वहुत दूर फैंक दिये हैं ।।

3. पाटण की 16630 क्रमांक की पाण्डुलिपि में उपलब्ध हो रहा बृहत्पाठ भले ही उस पाण्डुलिपि के लेखन-काल के अनुसार पंदरवी या सोलहवी शती का लिखा हुआ हो, किन्तु उस प्रति में संचरित हुआ पाठ तो दशवी-ग्यारहवी शती में भी प्रचलित था । क्योंकि इन 75 देवनागरी पाण्डुलिपियों में से (क-1) यूथ की पाँच एवं (ख-1) यूथ की दो पाण्डुलिपियों में जो बृहत्पाठ सुरक्षित रहा है, वही पाठ भोजराज के समय (ई.स.1050) में भी प्रचलित था ऐसा सप्रमाण हम कह सकते हैं । क्योंकि इन पाण्डुलिपियों में मिल रहा, तृतीयांक का यह ("विमर्शच्छेदि वचनम् । पर्याप्तमेतावता कामिनः") वाक्य भोजराज के शृङ्गारप्रकाश[10] में यथातथ उद्धृत किया हुआ मिलता है ।। यानि देवनागरी वाचना की इस विशिष्ट पाठपरम्परा ग्यारहवी शती से भी पहले से चली आ रही है- ऐसा सिद्ध हो रहा है । देवनागरी वृहत्पाठ की प्राचीनता का इतिहास अब हमारे सामने आ गया है । यह जानकारी ही प्रस्तुत अनुसन्धान की सब से बडी उपलब्धि है ।।

4. इस नाटक की प्राकृत उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद (प्राकृतविवृति) देनेवाली पाण्डुलिपियों में भी इस नाटक की देवनागरी वाचना के पूर्वोक्त त्रिविध पाठों का संचरण हुआ है । पूणें की आनन्दाश्रम शोध संस्थान की एक पाण्डुलिपि (क्रमांक: एस(4) 52- 519) में तो इस नाटक के बृहत्पाठ की भी प्राकृत उक्तियों का संस्कृतछायानुवाद दिया गया है ।

5. इन प्राकृतच्छायानुवादों वाली पाण्डुलिपियों से यह भी ज्ञात होता है कि केवल देवनागरी वाचना के पाठ का ही संस्कृतच्छायानुवाद देने वाली पाण्डुलिपियाँ आज उपलब्ध हो रही है । किन्तु मैथिली या बंगाली वाचनाओं के पाठ का संस्कृतच्छायानुवाद किसीने बनाया हो तो वह ज्ञात नहीं है । वह प्रकाश में नहीं आया है । (हो सकता है कि बहुत प्राचीन काल में ऐसे संस्कृतच्छायानुवादों की आवश्यकता न भी रही हो ।)

6. डी.ए.वी. कॉलेज, चंडीगढ की पाण्डुलिपि (क्रमांक - 5448) में जो लघुपाठ मिलता है वह स्पष्टतया काश्मीरी शारदा-पाठ[11] का ही सीधा संक्षेपीकरण है- ऐसा असंदिग्धतया सिद्ध होता है । जिसके परिणाम स्वरूप अब यह पूर्वावधारणा तूट जाती है कि केवल दक्षिणभारत के चाक्यारों के द्वारा ही संस्कृत नाटकों का संक्षेपीकरण किया गया था । क्योंकि चंडीगढ की उपर्युक्त पाण्डुलिपि इस वात की गवाह बनती है कि इस नाटक की (अन्य वाचनाओं के) बृहत्पाठ का संक्षेपीकरण देश के अन्य प्रदेशों में भी कदाचित् हुआ था ।

7. तथा (काश्मीरी बृहत्पाठ का संक्षेपीकरण देनेवाली) चंडीगढ में संगृहीत 5448 क्रमांक की पाण्डुलिपि इस बात का भी प्रमाण वनती है कि "कवि-प्रणीत इस नाटक के मूल लघुपाठ में प्रक्षेप करके, कालान्तर में वृहत्पाठ बनाया गया होगा" – ऐसी पूर्वावधारणा निराधार है । हकीकत में तो पहला (काश्मीरी वाचना का) बृहत्पाठ ही था, तत्पश्चात् उसमें संक्षेपीकरण करके लघुपाठ बनाया गया है । (और, जैसा हमने अन्यत्र प्रस्थापित किया है वैसे उपलब्ध सभी वाचनाओं में से काश्मीरी वाचना का पाठ ही प्राचीनतम है, जिसमें से ही क्रमशः मैथिली, बंगाली, दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचना के पाठ आविष्कृत किये गये हैं ।)

8. दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के पाठभेदों का तुलनात्मक अध्ययन करके, मैंने "नाट्यम्" में एक अभिप्राय प्रकाशित किया था[12] । जिसमें कहा गया था कि दाक्षिणात्य वाचना में आन्तरिक सम्भावनायुक्त पाठान्तरों की रक्षा ज्यादा हुई है,

---

[10] द्रष्टव्य हैः- शृङ्गारप्रकाशः 29-105, पृष्ठ- 1300 (सं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रिय कला-केन्द्र, दिल्ली, 2007)

[11] द्रष्टव्य – अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम् । (काश्मीरी वाचना का समीक्षित पाठसम्पादन), सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2018

[12] अभिज्ञानशाकुन्तलम् – देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचनाओं की पाठालोचना । वसन्तकुमार म. भट्ट, प्रकाशक एवं सम्पादक – श्रीराधावल्लभ त्रिपाठी, नाट्यम्, अंक- 75, 2015, सागर, (पृ. 33 से 58)

उसी लिए वह पाठ देवनागरी के संक्षिप्त पाठ की अपेक्षा से पहले बना होगा। वह अभिप्राय भी अब बदलना होगा। क्योंकि, सभी प्रदेशों की विभिन्न लिपिओं में चल रही पाठपरम्पराओं में एक समान रूप से संक्षेपीकरण किया गया होगा। तथा संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति का पौर्वापर्य ढूँढने के लिए कुछ अन्य प्रयास करना होगा॥

-----8888------

परिशिष्ट – 1,

राष्ट्रिय पाण्डुलिपि मीशन, दिल्ली से प्राप्त हुई जानकारियाँ (NMM_Data_Based_Information)

No.	Name of the Inststitute	Title	Comp	Manus _no	Folio _no	Pages	Material
.1	Baisvara Shodh Sansthan, Chaman Ganj, Lalganj, Rai Bareilly	Abhijñāna Śākuntaka	Complete	13	217	0	Paper
2	Dev Kumar Jain Oriental Library, Sri Bhagwan Mahavir Marg, Aara, Bhojpur	Abhijñanaśākuntala	Incomplete	89/97	1	0	Paper
3	S.S.S. Uni,S.B.L, Varanasi	Abhijñanaśākuntala	Complete	105279	51	0	Paper
4	Dev Kumar Jain Oriental Library, Sri Bhagwan Mahavir Marg, Aara, Bhojpur	Abhijñānaśakuntala	Incomplete	105/15	0	0	Paper
5	Jagdish Singh, Yadavpur, Bahiya, **Bhojpur**	Abhijñānaśakuntala	Complete	4	0	126	Paper
6	Ram Nivas Misra, Mahuli, Bahiya, Bhojpur	Abhijñānaśakuntala	Complete	3	0	126	Paper
7	Bihari Misra, Sahjouli, Bahiya, **Bhojpur**	Abhijñānaśakuntala	Complete	1	0	126	Paper
8	Ram Pyare Jha, Parihar, Bakhari, Begusarai	Abhijñānaśakuntala	Incomplete		7	14	Paper
9	Ganpat Chaudhary, Kosihan, Koilavar, **Bhojpur**	Abhijñānaśakuntala	Complete	1	0	126	Paper
10	Vrinda Bihari Shukla, Shuklpura, Aara	Abhijñānaśakuntala	Complete	1	0	156	Paper
11	Ashok Singh, Devadhai, Aara	Abhijñānaśakuntala	Complete	1	0	162	Paper
12	Balram Ojha,Abatana, Bahiya, Bhojpur	Abhijñānaśakuntala	Complete	4	0	126	Paper

13	Rameshwar Pandey, Mahakampur, Purvi Badahara,Bhojpur	Abhijñānaśākuntala	Complete	1	0	126	Paper
14	Arun Tiwari, Matukapur, Purvi Badahara, Bhojpur	Abhijñānaśākuntala	Complete	1	0	140	Paper
15	Dwarka Pandey, Nagopur, Aara, Bihar	Abhijñānaśākuntala	Complete	1	0	150	Paper
16	Buchul Pandey, Khajuriya, Bahiya, Bhjpur	Abhijñānaśākuntala	Complete	4	0	128	Paper
17	Nagari Pracarini Sabha, Kashi, Maidagina	Abhijñānaśākuntala	Complete	4872.1	43		Paper
18	Allahabad Sangrhalaya, Azad Park, Allahabad	Abhijñānaśākuntala	Incomplete	169	41	0	Paper
19	Nagari Pracini Sabha, Maidagni Pradhana, Dakghar , Kasi	Abhijñānaśākuntala	Incomplete	6184	0	60	Paper
20	Allahabad Sangrhalaya, Azad Park , Allahabad	Abhijñānaśākuntala	Complete	324	57	0	Paper
21	Bharat Kala Bhavan, B.H.U., Varanasi	Abhijñānaśākuntala	Incomplete	4125	5		Paper
22	Nagari Pracarini Sabha, Kashi, Maidagina	Abhijñānaśākuntala	Incomplete	6184.1	60		Paper
23	D.A.V.College, Lalchand Research Library, Sector-10, Chandigarah	Abhijñānaśākuntala	Incomplete	3676	27	0	Paper
24	D.A.V.College, Lalchand Research Library, Sector-10, Chandigarah	Abhijñānaśākuntala	Complete	5448	63	0	Paper
25	S.S.Uni., Jagatgunj, Varanasi	Abhijñānaśākuntala	Complete	104987	38	0	Paper
26	S.S.Uni., Jagatgunj, Varanasi	Abhijñānaśākuntala	Complete	105291	41	0	Paper
27	S.S.Uni., Jagatgunj, Varanasi	Abhijñānaśākuntala	Complete	104534	6	0	Paper
28	S.S.Uni., Jagatgunj, Varanasi	Abhijñānaśākuntala	Complete	104428	15	0	Paper
29	GOML., Chennai	Abhijñānaśākuntala	Complete	12471	47	0	Paper
30	S.S.Uni., Jagatgunj, Varanasi	Abhijñānaśākuntala	Complete	106479	36	0	Paper
31	S.S.Uni., Jagatgunj, Varanasi	Abhijñānaśākuntala	Complete	105894	52	0	Paper
32	Sricharan Parida, Post Pentha, Kendrapara	Abhijñānaśākuntalā	Complete		270	540	Palm Leaf
33	Bharat Kala Bhavan, B.H.U	Abhijñānaśākuntalā	Complete		5		Paper
34	Nagari Pracarini Sabha, Kashi, Maidagina	Abhijñānaśākuṅtala	Incomplete	6184	25-84		Paper
35	Bharat Kala Bhavan, B.H.U	Abhijñānaśākuntala (Caturtha-Aṅka)	Complete	2856	9		Paper
36	Nandlal Nayan, Phool Malik, Sahebpur, Kamaal, Begusarai	Abhijñanaśākuntala (Padhānuvāda)	Complete		150	300	Paper
37	Bharat Kala Bhavan, B.H.U	Abhijñānaśākuntala (Prākṛtavikṛti)	Complete	88	29		Paper
38	Nagarjuna Buddhist Foundation, Andhiari Bagh, Gorkhpur	Abhijñānaśakuntalam	Incomplete	863	7	14	Paper
39	Nagarjuna Buddhist Foundation, Andhiari Bagh, Gorkhpur	Abhijñānaśakuntalam	Incomplete	862	7	14	Paper

40	Nagari Pracarini Sabha, Maidagin, Varanasi	Abhijñānaśākuntalam	Complete	4572	Jan-43		Paper
41	S.S.Uni., Jagatgunj, Varanasi	Abhijñānaśākuntalama	Incomplete	42415	6		Paper
42	S.S.Uni., Jagatgunj, Varanasi	Abhijñānaśākuntalama	Incomplete	42416	2		Paper
43	S.S.Uni., Jagatgunj, Varanasi	Abhijñānaśākuntalama	Complete	4179	62		Paper
44	S.S.Uni., Jagatgunj, Varanasi	Abhijñānaśākuntalama	Incomplete	42417	1.16		Paper
45	S.S.Uni., Jagatgunj, Varanasi	Abhijñānaśākuntalama	Incomplete	42637	33		Paper
46	S.S.Uni., Jagatgunj, Varanasi	Abhijñānaśākuntalama	Incomplete	42473	8		Paper
47	S.S.Uni., Jagatgunj, Varanasi	Abhijñānaśākuntalama	Incomplete	42808	7		Paper
48	S.S.Uni., Jagatgunj, Varanasi	Abhijñānaśākuntalama	Incomplete	42562	25		Paper
49	S.S.Uni., Jagatgunj, Varanasi	Abhijñānaśākuntalama	Incomplete	42531	10		Paper
50	Nagarjuna Buddhist Foundation, Andhiari Bagh, Gorkhpur	Abhijñānaśākuntala	Incomplete	8	7	13	Paper
51	G. O.M. L. , Chennai	Abhijñānaśākuntala-Prākṛtavivṛti	Complete	12490	19	0	Paper
52	G. O.M. L. , Chennai	Abhijñānaśākuntalaṭippaṇī	Complete	4367(b)	18	0	Paper
53	G. O.M. L. , Chennai	Abhijñānaśākuntalavyākhyā-Anvayabodhinī	Incomplete	2479	69	0	Paper
54	G. O.M. L. , Chennai	Abhijñānaśākuntalavyākhyā-Arthadyotanikā	Incomplete	12482	58	0	Paper
55	G. O.M. L. , Chennai	Abhijñānaśākuntala vyākhyāna	Incomplete	2778	97	0	Paper
56	Lakshaman Pustkalya, K 24/20, Ramghat, Varanasi	Abhijñānaśākuntala	Incomplete	No	9	no	Pamera Leaves
57	The Asiatic Society, 1, Park Street, Calcatta	Abhijñānaśākuntala	Incomplete	IM 8045	63	0	Paper
58	Vrindavan Research Institute, Raman Reti Marg, Vrindavan , Mathura	Abhijñānaśākuntala	Incomplete	1152	56	112	Paper
59	Patwari Digambar, Banswada, Nizamabad	Abhigñāna Śākuntala Vyākhya	Complete	-	-	91	Paper
60	Patwari Digambar, Banswada, Nizamabad	Abhigñāna Śākuntala Vyākhya	Complete	-	-	78	Paper
61	Patwari Digambar, Banswada, Nizamabad	Abhigñāna Śākuntala Vyākhya	Complete	-	-	65	Paper
62	Patwari Digambar, Banswada, Nizamabad	Abhigñāna Sākuṅtalaṁ	Incomplete	-	-	34	Paper

63	Sanjay Sharma, Jo Ji Mashobra, Shimla	Abhigyānaśakuntalama	Complete			208	Paper
64	Satya Narayan Panigrahi, Madhusadanpur, Basudevpur,Bhadrak	Abhighanaśankuntalam	Complete		80	160	Palm Leaf
65	Baisvara Shodh Sansthan(, Chamanganj), Lalganj Raibareilly	Abhijñāna Śākuntaka	Complete	13	217	0	Paper
66	Baisvara Shodh Sansthan (Chamanganj), Lalganj Raibareilly	Abhijñāna Śākuntaka	Complete	13	217	0	Paper
67	Oriental Reserch Institute, Mysore	Abhijñānasaikuntalama	Complete	C.4764	117		Palm Leaf
68	Chinmaya International Foundations, CIF,Adi Sankara Nilayam ,Veliyanad, Kanayannud,Ernakulam	Abhijnanaśakuntala	Complete	10	86		Paper
69	Allahabad Sangrhalaya, Azad Park	Abhijñanaśākuntala	Complete	324	57	0	Paper
70	Allahabad Sangrhalaya, Azad Park	Abhijñanaśākuntala	Complete	324	57	0	Paper
71	SSUni.,S.B.L., Varanasi	Abhijñanaśākuntala	Complete	105279	51	0	Paper
72	Shri Ranbir Sanskrit Research Institute, Jammu	Abhijñanaśākuntalā	Complete	6341	66	132	Paper
73	Shri Ranbir Sanskrit Research Institute, Jammu	Abhijñanaśākuntalā	Complete	6341	66	132	Paper
74	SSUni.,S.B.L., Varanasi	Abhijñānaśakuntala	Complete	104534	6	0	Paper
75	Srinivasachariy,Sirri, Sodi, Uttarakarnataka	Abhijñānaśakuntala	Complete	106	42		Paper
76	Sampurnanand Skt. Uni. Jagatganj, Varanasi	Abhijñānaśakuntala	Incomplete	43003	32		Paper
77	Dr. Bhagwaan Das Kendriya Pustakalaya (Mahatma Gandhi Kasi Vidhya Peeth)	Abhijñānaśakuntala	Complete	698	37	73	Paper
78	58) Bharata Itihasa Sanshodhana Mandala (G.Ra.Dev.), 1321,Sadasiva Peth, Poona	Abhijñānaśākuntala	Incomplete	63.531	16		Paper
79	Allahabad Sangrhalaya, Azad Park	Abhijñānaśākuntala	Incomplete	169	41	0	Paper
80	SSUni.,S.B.L., Varanasi, Varanasi	Abhijñānaśākuntala	Complete	104987	38	0	Paper
81	SSUni.,S.B.L., Varanasi, Varanasi	Abhijñānaśākuntala	Complete	106479	36	0	Paper
82	SSUni.,S.B.L., Varanasi, Varanasi	Abhijñānaśākuntala	Complete	105291	41	0	Paper
83	SSUni.,S.B.L., Varanasi, Varanasi	Abhijñānaśākuntala	Complete	105894	52	0	Paper
84	Nagari Pracarini Sabha, Kashi	Abhijñānaśākuntala	Incomplete	6184.1	60		Paper
85	Bharat Kala Bhavan, BHU	Abhijñānaśākuntala	Incomplete	4125	5		Paper
86	Nagari Pracarini Sabha, Kashi	Abhijñānaśākuntala	Complete	4872.1	43		Paper
87	Sampurnanand Skt. Uni. Jagatganj, Varanasi	Abhijñānaśākuntala	Incomplete	43473	40		Paper
88	Allahabad Sangrhalaya, Azad Park	Abhijñānaśākuntala	Incomplete	169	41	0	Paper

89	Bharat Kala Bhavan, BHU, Varanasi	Abhijñānaśākuntalā	Complete		5		Paper
90	Nagari Pracarini Sabha, Kashi	Abhijñānaśākuṅtala	Incomplete	6184	25-84		Paper
91	Bharat Kala Bhavan, BHU	Abhijñānaśākuntala (Caturtha-Aṅka)	Complete	2856	9		Paper
92	Bharat Kala Bhavan, BHU	Abhijñānaśākuntala (Prākṛtavikṛti)	Complete	88	29		Paper
93	HNB, Garhwal University-2, Pauri	Abhijñānaśākuntala-caturthāṅka	Complete	1	22	44	Paper
94	Dev Kumar Jain Oriental Library, Sri Bhagwan Mahavir Marg, Aara, Bhojpur	Abhijñānaśakuntalam	Incomplete	105/15	0	0	Paper
95	Nagarjuna Buddhist Foundation, Andhiari Bagh, Gorkhpur	Abhijñānaśakuntalam	Incomplete	863	7	14	Paper
96	Nagarjuna Buddhist Foundation, Andhiari Bagh, Gorkhpur	Abhijñānaśakuntalam	Incomplete	862	7	14	Paper
97	Nagari Pracini Sabha Kasi, Maidagni Pradhana	Abhijñānaśakuṅtalam	Incomplete	6184	0	60	Paper
98	Nagari Pracini Sabha Kasi	Abhijñānaśakuṅtalam	Incomplete	6184	0	60	Paper
99	Nagari Pracarini Sabha, Kashi	Abhijñānaśākuntalam	Complete	4572	Jan-43		Paper
100	Rastriya Sanskrit Sansthan, Allahabad	Abhijñānaśākuntalama	Complete	43427	32	63	Paper
101	Sampurnanand Skt. Uni. Jagatganj, Varanasi	Abhijñānaśākuntalama	Incomplete	42637	33		Paper
102	Sampurnanand Skt. Uni. Jagatganj, Varanasi	Abhijñānaśākuntalama	Incomplete	42416	2		Paper
103	Sampurnanand Skt. Uni. Jagatganj, Varanasi	Abhijñānaśākuntalama	Incomplete	42531	10		Paper
104	Sampurnanand Skt. Uni. Jagatganj, Varanasi	Abhijñānaśākuntalama	Incomplete	42562	25		Paper
105	Sampurnanand Skt. Uni.	Abhijñānaśākuntalama	Incomplete	42415	6		Paper
106	Sampurnanand Skt. Uni.	Abhijñānaśākuntalama	Complete	4179	62		Paper
107	Sampurnanand Skt. Uni.	Abhijñānaśākuntalama	Incomplete	42417	1.16		Paper
108	Sampurnanand Skt. Uni.	Abhijñānaśākuntalama	Incomplete	42473	8		Paper
109	Sampurnanand Skt. Uni.	Abhijñānaśākuntalama	Incomplete	42808	7		Paper
110	Raastriya Sanskrita Sansthana, Allahabad	Abhijñānaśākuntalama -ṭīkā	Incomplete	46128	145	290	Paper
111	Acharya Sankarshana Prapannacharya, Nayagauon, Chitrakoot	Abhijñānaśākuntalā	Complete	15-1	28	56	Paper
112	Nagarjuna Buddhist Foundation(MCC),	Abhijñāṇaśākuntala	Incomplete	8	7	13	Paper

	Andhiari Bagh, 18,Andhiari Bagh, Gorakhpur, U.P						
113	Sampurnanand Skt. Uni. Jagatganj, Varanasi	Abhijñānaśākuntala prākṛtānuvāda	Incomplete	42418	16		Paper
114	Sampurnanand Skt. Uni. Jagatganj, Varanasi	Abhijñānaśākuntala prākṛtānuvāda	Incomplete	43165	15		Paper
115	Sampurnanand Skt. Uni. Jagatganj, Varanasi	Abhijñānaśakuntal Arthadyotnikā	Incomplete	41009	74,50		Paper
116	Trigunanandji Tiwari, Sabalpur (Madhya), Sonepur, Chapra, Saran	Abhijñanaśākuṅtalatīkā	Complete		41	80	Paper
117	Sampurnanand Skt. Uni.	Abhijñānaśākuntalaṭīkā	Incomplete	43481	4		Paper
118	Sampurnanand Skt. Uni.	Abhijñānaśākuntalaṭīkā	Incomplete	43507	2		Paper
119	Sampurnanand Skt. Uni.	Abhījñāśākuntalasaṭippaṇa	Incomplete	42448	43		Paper
120	Sampurnanand Skt. Uni.	Abhijñaśakuntalaṭīkā	Incomplete	42113			Paper

परिशिष्ट – 2

(क-1) यूथ की पाण्डुलिपियों की संतुलन-पत्रिका

तृतीयाङ्कस्य श्लोकाः, तेषां च क्रमः	पाटण-2, क्र. 16630	अमदावाद क्र. 1948	जोध. 1 क्र.- 21422	जोध. 2 , क्र. 23590	जोध.3 क्र. 28149	आनंदाश्रम पूणें, S4(3)- 52-517
हस्तप्रतियों के क्रमांक–	1	2	3	4	5	6
लेखन-काल (संवत - ई. स.)	ई.1457		ई. 1627		अपूर्ण	
का कथा बाणसन्धाने-1	1	1	1	1	1	1
जाने तपसो वीर्यम्, सा बाला-2	2	2	2	2	2	2
अनिशमपि मकरकेतोर्मनसो-3	3	3	3	3	3	5
तव कुसुमशरत्वम्-4	4	4	4	4	4	4
अद्यापि नूनं हरकोपवह्नि-5	5	5	5	5	5	3
एते सद्यः प्रचितकुसुमारि-6	6	6	6	0	0	0
वृथैव संकल्पशतैरजस्रं-	0	0	0	0	0	6
शक्योऽरविन्दसुरभि-7	7	7	7	6	6	8
नोन्मीलयति तावत् बन्धनकोशा-8	8	8	8	7	7	7
अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढा-9	9	9	9	8	8	9
स्तनन्यस्तोशीरम् प्रशिथिल-10	10	10	10	9	9	10
शशिकरविशदान्यस्याः-11	11	11	11	10	10	11
क्षामक्षामकपोलमाननमुरः-12	12	12	12	11	11	12

पृष्टा जनेन समदुःखेन बाला-13	13	13	13	12	12	13
स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता-14	14	14	14	13	13	14
अशिशिरैरन्तस्तापाद् विवर्ण-15	15	15	15	14	14	15
अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको-16	16	16	16	15	15	16
अयं स यस्मात्प्रणयावधीरणाम्	0	0	0	16	0	0
उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः-17	17	17	17	17	16	17
तुज्झ ण जाणे हिययं-18	18	18	18	18	17	18
तपति तनुगात्रि मदन-19	19	19	19	19	18	19
संदष्टकुसुमशयनान्याशु-20	20	20	20	20	19	20
न केवलं रूपेण बाला व्रीडिता-21	21	21	21	21	20	0
प्रभुत्वमेवास्खलिताभितापं-22	22	22	0	0	21	0
अपराधमिमं ततः सहिष्ये-23	23	23	22	0	22	23
इदमनन्यपरायणमन्यथा-24	24	24	23	22	23	21
परिग्रहबहुत्वेपि द्वे प्रतिष्ठे-25	25	25	24	23	24	22
किं शीकरैः श्रमविनोदिभिरार्द्रवातं-26	26	26	25	24	25	24
उत्सृज्य कुसुमशयनं-27	27	27	26	25	26	25
अप्यौत्सुक्ये महति न वरप्रार्थना-28	28	28	27	26	27	26
गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो-29	29	29	28	27	28	27
अपरिक्षतकोमलस्य यावत्-30	30	30	29	28	29	28
त्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयं -31	31	31	30	29	30	29
अनिर्दयोपभोग्यस्य रूपस्य-32	32	32	31	30	31	30
मणिबन्धनविगलितमिव-33	33	33	32	31	32	31
अनेन लीलाभरणेन ते प्रिये-34	34	34	33	32	33	32

पिपासाक्षामकण्ठेनयाचितं-35	35	35	34	33	34	33
हरकोपाग्निदग्धस्य-36	36	36	35	34	35	34
अयं हि ते श्यामलतामनोहरं-37	37	37	36	35	36	35
चारुणां स्फुरितेनायमपरिक्षतकोम-38	38	38	37	36	37	36
इदमुपकृतिपमवले सुरभि मुखं-39	39	39	38	37	38	37
मुहुरङ्गुलिसंवृताधरोष्ठं-40	40	40	39	38	40	38
तस्याः पुष्पमयी शय्या-41	41	41	40	39	41	39
रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना-42	0	0	0	40	0	0
सायंतने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते-43	42	42	41	41	42	40
पार्थिवो दुष्कन्तः	अस्ति	अस्ति	अस्ति	नास्ति	अस्ति	नास्ति
पूर्वार्धेन पुष्पशय्यामुदस्य - अपास्य	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	उदस्य
विमर्शच्छेदि वच, पर्याप्तमेतावतः कामिनः	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	नास्ति
महानदी-सागर,	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति
सहकार-अतिमुक्तलता	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति
उपविशति । सलज्जं तिष्ठति ।	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति
किंचित् पादावपसारयति ।	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति
लब्धोपध उपशमम् गमिष्यति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति ।
मेघनादाहता मयूरी	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	अस्ति ।
उत्थाय गन्तुमिच्छति । (देवनागरी)						अस्ति

परिशिष्ट – 3

(क-2) पाण्डुलिपियों की संतुलन-पत्रिका

(क-2) यूथ	चंदी गढ	बीकानेर	डे क्क न	बी.एल.ई	कोटा-1,	कोटा-3	जयपुर-1	जयपुर-2	उज्जयिनी	गंगानाथ	गंगानाथ	उज्जयिनी	उज्जयिनी	डे क्क न	पेन्सिल्वानि
प्रतियों के क्रम	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26
लेखन-काल															
का कथा-1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1
जाने तपसो-2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2
अनिशमपि-3	0	0	6	5	6	6	6	0	3	0	0	7	5	5	5
तव कुसुम-4	3	3	4	4	4	4	4	3	5	3	3	4	4	4	4
अद्यापि नूनं-5	4	4	3	3	3	3	3	4	4	4	4	3	3	3	3
एते सद्यः -6	0	0	0	0	0	0	0	7	0	0	0	0	0	0	0
वृथैव संक-	0	0	5	6	5	5	5	5	6	0	0	8	6	6	6
शक्योऽरवि-7	5	5	8	8	8	8	8	8	8	5	5	5	8	8	7
नोन्मीलयति-8	0	0	7	7	7	7	7	6	7	0	0	0	7	7	0
अभ्युन्नता-9	6	6	9	9	9	9	9	9	9	6	6	6	8	9	8
स्तनन्य-10	7	7	10	10	10	10	10	10	10	7	7	9	9	10	9
शशिकर-11	0	0	11	0	0	0	0	11	11	0	0	0	0	0	0
क्षामक्षा-12	8	8	12	11	11	12	11	12	12	8	8	10	10	11	10
पृष्टा जनेन-13	9	9	13	12	12	13	12	13	13	9	9	11	11	12	11
स्मर एव-14	10	10	14	13	13	14	13	14	14	10	10	12	12	13	12
अशिशिरैर-15	11	11	15	14	14	15	14	15	15	11	11	13	13	14	13

अयं स ते ति-16	12	12	16	15	15	16	15	16	16	12	12	14	14	15	14
अयं स यस्मात्	0	0	17	16	16	17	16	17	17	0	0	0	15	16	0
उन्नमितैक-17	13	13	18	17	17	18	17	18	18	13	13	15	16	17	15
तुज्झ ण जा-18	14	14	19	18	18	19	18	19	19	14	14	16	17	18	16
तपति तनु-19	15	15	20	19	19	20	19	20	20	15	15	17	18	19	17
संदष्टकुसुम-20	16	16	21	20	20	21	20	21	21	16	16	18	19	20	18
न केवलं-21	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
प्रभुत्वमेव-22	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
अपराधमिमं-23	19	0	0	0	0	0	0	0	0	18	0	0	0	0	0
इदमनन्य-24	17	17	22	21	21	22	21	22	22	17	17	19	20	21	19
परिग्रहबहु-25	18	18	23	22	22	23	22	23	23	19	18	20	21	22	20
किं शीकरैः-26	20	19	24	23	23	24	23	24	24	20	19	21	22	23	21
उत्सृज्य-27	21	20	25	24	24	25	24	25	25	21	20	22	23	24	22
अप्यौत्सुक्ये-28	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	23	0	0	0
गान्धर्वेण-29	22	21	26	25	25	26	25	26	26	22	21	24	24	25	23
अपरिक्षत-30	23	22	27	26	26	27	26	27	27	23	22	25	25	26	24
त्वं दूरमपि-31	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
अनिर्दयोप-32	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
मणिबन्धन-33	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
अनेन लीला-34	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
पिपासा-35	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
हरकोपाग्नि-36	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
अयं हि ते-37	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0

चारुणास्फु-38	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
इदमुपकृति-39	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
मुहुरङ्गुलि-40	24	23	28	27	27	28	27	28	28	24	23	26	26	27	25
तस्याः पुष्प-41	25	24	29	28	28	29	28	29	29	25	24	27	27	28	26
रहः प्रत्या-42	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
सायंतने-43	26	25	30	29	29	30	29	30	30	26	25	28	28	29	27
पार्थिवो दुष्कन्तः	दुष्कुंतः	नास्ति		नास्ति	नास्ति	नास्ति	अस्ति	अस्ति	नास्ति		नास्ति		नास्ति	नास्ति	नास्ति
पुष्पशय्यामुदस्य	उदस्य		उदस्य						उदस्य		उदस्य	उदस्य	उदस्य	उदस्य	
विमर्शच्छेदि वच, पर्याप्तमेतावतः कामिनः	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	अस्ति	नास्ति		नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति
महानदी-सागर,	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति		अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति
सहकार-अतिमुक्त	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति		अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति
उपविशति । सलज्जं तिष्ठति	नास्त	नास्ति	अस्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति
पादावपसारयति ।	नास्ति								अस्ति	अस्ति	नास्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	नास्ति
लब्धोषधा उपशमं	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	उत्सवा	अस्ति
मेघनादाहता मयूरी	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति
गन्तुमिच्छति									उत्थाय प्रस्थिता			गन्तुमि	गन्तुमि	गंतुमि	

परिशिष्ट – 4,

(ख-1) यूथ की पाण्डुलिपियों की संतुलन-पत्रिका

तृतीयाङ्कस्य श्लोकाः, तेषां च क्रमः	पाटण-1, क्र. 6654, वाडी	जोध.4 क्र. 39447	भरतपुर क्र. 7578	वृन्दावन, बी.जे. इन्स्टी. 6370	वाराणसी भारत-कलाभवन क्र. 87
हस्तप्रतियों के क्रमांक–	7	8	9	10	11
लेखन-काल (संवत - ई. स.)				ई.1765	
का कथा बाणसन्धाने-1	1	1	1	1	1
जाने तपसो वीर्यम्, सा बाला-2	2	2	2	2	2
अनिशमपि मकरकेतोर्मनसो-3	3	5	3	5	5
तव कुसुमशरत्वम्-4	4	4	4	4	4
अद्यापि नूनं हरकोपवह्नि-5	5	3	5	3	3
एते सद्यः प्रचितकुसुमारि-6	0	7	6	7	0
वृथैव संकल्पशतैरजस्रं-	0	6	0	6	6
शक्योऽरविन्दसुरभि-7	6	9	7	9	8
नोन्मीलयति तावत् बन्धनकोशा-8	0	8	0	8	7
अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढा-9	7	10	8	9	9
स्तनन्यस्तोशीरम् प्रशिथिल-10	8	11	9	10	10
शशिकरविशदान्यस्याः-11	9	12	10	11	0
क्षामक्षामकपोलमाननमुरः-12	10	13	11	12	11
पृष्टा जनेन समदुःखेन बाला-13	11	14	12	13	12

स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता-14	12	15	13	14	13
अशिशिरैरन्तस्तापाद् विवर्ण-15	13	16	14	15	14
अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको-16	14	17	15	16	15
अयं स यस्मात्प्रणयावधीरणाम्	0	0	0	0	16
उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः-17	15	18	16	17	17
तुज्झ ण जाणे हिययं-18	16	19	17	18	18
तपति तनुगात्रि मदन-19	17	20	18	19	19
संदष्टकुसुमशयनान्याशु-20	18	21	19	20	20
न केवलं रूपेण बाला व्रीडिता-21	0	0	0	0	0
प्रभुत्वमेवास्खलिताभितापं-22	0	0	0	0	0
अपराधमिमं ततः सहिष्ये-23	0	0	0	0	0
इदमनन्यपरायणमन्यथा-24	19	22	20	21	21
परिग्रहवहुत्वेपि द्वे प्रतिष्ठे-25	20	23	21	22	22
किं शीकरैः श्रमविनोदिभिरार्द्रवातं-26	21	24	22	23	23
उत्सृज्य कुसुमशयनं-27	22	25	23	24	24
अप्यौत्सुक्ये महति न वरप्रार्थना-28	23	26	24	25	0
गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो-29	24	27	25	26	25
अपरिक्षतकोमलस्य यावत्-30	25	35	0	35	26
त्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयं -31	26	28	28	27	27
अनिर्दयोपभोग्यस्य रूपस्य-32	27	29	26	28	28
मणिवन्धनविगलितमिव-33	28	30	27	29	29
अनेन लीलाभरणेन ते प्रिये-34	29	31	29	30	30
पिपासाक्षामकण्ठेनयाचितं-35	30	32	30	31	31

हरकोपाग्निदग्धस्य-36	31	33	31	32	32
अयं हि ते श्यामलतामनोहरं-37	32	34	32	33	33
चारुणा स्फुरितेनायमपरिक्षतकोम-38	33	36	33	34	34
इदमुपकृतिपमवले सुरभि मुखं-39	34	37	34	36	35
मुहुरङ्गुलिसंवृताधरोष्ठं-40	35	38	35	37	36
तस्याः पुष्पमयी शय्या-41	36	39	36	38	37
रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना-42	0	40	37	39	0
सायंतने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते-43	37	41	38	40	38
पार्थिवो दुष्कन्तः	नास्ति	नास्ति	अस्ति	दुःष्यंतः	नास्ति
पूर्वार्धेन पुष्पशय्यामुदस्य - अपास्य	शयनम् उच्चास्य			उत्थाय	उदस्य
विमर्शच्छेदि वच, पर्याप्तमेतावतः कामिनः	अस्ति	नास्ति	अस्ति	नास्ति	नास्ति
महानदी-सागर,	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति
सहकार-अतिमुक्तलता	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति
उपविशति । सलज्जं तिष्ठति ।	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति
किंचित् पादावपसारयति ।	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति
लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति
मेघनादाहता मयूरी	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति
उत्थाय गन्तुमिच्छति । (देवनागरी)	प्रस्थिता			अस्ति	अस्ति

परिशिष्ट – 5,

(ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियों की संतुलन-पत्रिका (भाग-1)

(ख-2) यूथ	भाण्डा. पूर्ण 409	इला. 14193	चेके 12471	जोध.5 क्र. 07294	जोध.6 क्र. 28027	जोध. 7 क्र. 16657	सूरत 0874	होप्टन, 1086	कुरुक्षेत्र 51425	कोबा, गांधी. 9989	जम्मूरघुनाथ4236	जम्मू2रघुनाथ422	जम्मू 3 रणबीर423	जम्मू-766 -796	जम्मु5 -रघु. 6341	कोटा-2-क्र.7294	गंगानाथ झा- 9247	गंगानाथ-37377
प्रति का क्रम	27	28	29	30	31	32	33	34	35	36	37	38	39	40	41	42	43	44
का कथा-1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	त्रु	1	1	1	1	1	1
जाने तपसो-2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	3	2	त्रु	2	2	2	2	2	2
अनिशमपि-3	5	0	5	5	4	5	5	0	0	2	5	त्रु	5	0	0	5	4	0
तव कुसुम-4	4	4	4	4	5	4	4	3	3	4	4	3	4	4	3	4	5	4
अद्यापि नूनं-5	3	3	3	3	3	6	3	0	4	0	3	4	3	3	0	3	3	3
एते सद्यः -6	0	0	6	6	0	0	0	0	0	0	0	0	0	6	0	6	0	0
वृथैव संक-	6	0	0	0	6	7	6	0	0	0	6	0	6	5	0	0	0	0
शक्योऽरवि-7	7	5	8	8	7	8	8	5	5	6	7	5	7	8	4	8	7	6
नोन्मीलय-8	0	0	7	7	0	0	7	4	0	5	0	0	0	7	0	7	6	5
अभ्युन्नता-9	8	6	9	9	8	9	9	6	6	7	8	6	8	9	5	9	8	7
स्तनन्य-10	9	7	10	10	9	10	10	7	7	8	9	7	9	10	6	10	9	8
शशिकर-11	0	0	0	11	0	0	11	0	0	0	0	0	0	0	0	11	10	0
क्षामक्षा-12	10	8	11	12	10	11	12	8	8	9	10	8	10	11	7	12	11	9

पृष्टा जनेन-13	11	9	12	13	11	12	13	9	9	10	11	9	11	12	8	13	12	10
स्मर एव-14	12	10	13	14	12	13	14	10	10	11	12	10	12	13	9	14	13	11
अशिशिरैर-15	13	11	14	15	13	14	15	11	11	12	13	11	13	14	0	15	14	12
अयं स ते16	14	12	15	16	14	15	16	12	12	13	14	12	14	15	10	16	15	13
अयं स यस्मात्	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
उन्नमितैक-17	15	13	16	17	15	16	17	13	13	14	15	13	15	16	11	17	16	14
तुज्झ ण जा18	16	14	17	18	16	17	18	14	14	15	16	14	16	17	12	18	17	15
तपति तनु-19	17	15	18	19	17	18	19	15	15	16	17	15	17	13	13	19	18	16
संदष्टकुसुम-20	18	16	19	20	18	19	20	16	16	17	18	16	18	19	14	20	19	17
न केवलं-21	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
प्रभुत्वमेव-22	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
अपराधम-23	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
इदमनन्य-24	19	17	20	21	19	20	21	17	17	18	19	17	19	20	15	21	20	18
परिग्रहबह25	20	18	21	22	20	21	22	18	18	19	20	18	20	21	16	22	21	19
किं शीकरैः26	21	19	22	23	21	22	23	19	19	20	21	19	21	22	17	23	22	20
उत्सृज्य-27	22	20	23	24	22	23	24	20	20	21	22	20	22	23	18	24	23	21
अप्यौत्सुक्य28	0	0	24	25	23	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	25	0	0
गान्धर्वेण-29	23	21	25	26	24	24	25	21	21	22	23	21	23	24	19	26	24	22
अपरिक्षत-30	24	22	27	28	25	25	26	22	22	23	24	22	24	25	20	28	25	23
त्वं दूरम31	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
अनिर्दयोप-32	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
मणिबन्धन33	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
अनेनलीला34	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0

पिपासा-35	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
हरकोपाग्नि36	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
अयं हि ते-37	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
चारुणास्फु-38	0	0	26	27	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	27	0	0
इदमुपकृति39	0	0	0	0	26	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
मुहुरङ्गु40	25	23	28	29	27	26	27	23	23	24	25	23	25	26	21	29	26	24
तस्याः पुष्प41	26	24	29	30	28	27	28	24	24	25	26	24	26	27	22	30	27	25
रहः प्रत्या-42	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
सायंतने-43	27	25	30	31	29	28	29	25	25	26	27	25	27	28	23	31	28	26

(ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियों की संतुलन-पत्रिका (भाग-2)

(ख-2) यूथ (विभाग-2)	गंगानाथ-45086	गंगानाथ-43427	अल्हा-127-324	संपूर्णानंद-2073	बीकानेर-13442	मुंबई 542	नेपाल-5-3299	नेपाल 1-1696	नेपाल- 15420	आनन्दा.52- 514	आनन्दा-52- 516	उज्जयिनी 6765	उज्जयिनी- 5731	उज्जयिनी 14189	चंदीगढ - 3676	एर्णाकुलं पीएम 10	डेक्कन, पूर्णे 10948	राधनपुर(53) 1783
प्रति का क्रम	45	46	47	48	49	50	51	52	53	54	55	56	57	58	59	60	61	62
का कथा-1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	त्रु	त्रु	1	1	1
जाने तपसो-2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	त्रु	त्रु	2	2	2
अनिशमपि-3	5	0	5	4	0	0	0	0	0	5	0	0	0	त्रु	त्रु	0	3	0
तव कुसुम-4	4	3	4	5	3	3	3	3	3	3	3	3	3	त्रु	त्रु	3	4	3
अद्यापि नूनं-5	3	0	3	3	0	0	0	0	0	4	0	0	0	त्रु	त्रु	0	5	0
एते सद्यः -6	0	0	0	7	0	0	0	0	0	0	0	0	0	त्रु	त्रु	0	7	0

वृथैव संक-	6	0	0	6	0	0	0	0	0	6	0	0	0	त्रु	त्रु	0	6	0
शक्योऽरवि-7	8	5	7	9	4	4	4	4	4	8	4	4	4	त्रु	त्रु	4	9	4
नोन्मीलयति-8	7	4	6	8	0	0	0	0	0	7	0	0	0	त्रु	त्रु	0	8	0
अभ्युन्नता-9	9	6	8	10	5	5	5	5	5	9	5	5	5	त्रु	त्रु	5	10	5
स्तनन्य-10	10	7	9	11	6	6	6	6	6	11	6	6	6	त्रु	त्रु	6	11	6
शशिकर-11	11	8	10	0	0	0	0	0	0	10	0	0	0	त्रु	त्रु	0	12	0
क्षामक्षा-12	12	9	11	12	7	7	7	7	7	12	7	7	7	त्रु	त्रु	7	13	7
पृष्टा जनेन-13	13	10	12	13	8	8	8	8	8	13	8	8	8	त्रु	त्रु	8	14	8
स्मर एव-14	14	11	13	14	9	9	9	9	9	14	9	9	9	त्रु	त्रु	9	15	9
अशिशिरैर-15	15	12	14	15	10	10	10	10	10	15	10	10	10	त्रु	त्रु	10	16	10
अयं स ते ति16	16	13	15	16	11	11	11	11	11	16	11	11	11	त्रु	त्रु	11	17	11
अयं स यस्मात्	0	14	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	त्रु	त्रु	0	0	0
उन्नमितैक-17	17	15	16	17	12	12	12	12	12	17	12	12	12	त्रु	त्रु	12	18	12
तुज्झ ण जा-18	18	16	17	18	13	13	13	13	13	18	13	13	13	त्रु	त्रु	13	19	13
तपति तनु-19	19	17	18	19	14	14	14	14	14	19	14	14	14	त्रु	त्रु	14	20	14
संदष्टकुसुम-20	20	18	19	20	15	15	15	15	15	20	15	15	15	त्रु	त्रु	15	21	15
न केवलं-21	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	त्रु	त्रु	0	0	0
प्रभुत्वमेव-22	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	त्रु	त्रु	0	0	0
अपराधमि23	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	त्रु	त्रु	0	0	0
इदमनन्य-24	21	19	20	21	16	16	16	16	16	21	16	16	16	त्रु	त्रु	16	22	16
परिग्रहबहु-25	22	20	21	22	17	17	17	17	17	22	17	17	17	त्रु	त्रु	17	23	17
किं शीकरैः-26	23	21	22	23	18	18	18	18	18	23	18	18	18	त्रु	त्रु	18	24	18
उत्सृज्य-27	24	22	23	24	19	19	19	19	19	24	19	19	19	त्रु	त्रु	19	25	19

अप्यौत्सुक्ये-28	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	त्रु	त्रु	0	26	0
गान्धर्वेण-29	25	23	24	25	20	20	20	20	20	25	20	20	20	त्रु	त्रु	20	27	20
अपरिक्षत-30	26	24	25	26	21	21	21	21	21	26	21	21	21	त्रु	त्रु	21	28	21
त्वं दूरमपि-31	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	त्रु	त्रु	0	0	0
अनिर्दयोप-32	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	त्रु	त्रु	0	0	0
मणिबन्धन-33	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	त्रु	त्रु	0	0	0
अनेन लीला34	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	त्रु	त्रु	0	0	0
पिपासा-35	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	त्रु	त्रु	0	0	0
हरकोपाग्नि-36	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	त्रु	त्रु	0	0	0
अयं हि ते-37	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	त्रु	त्रु	0	0	0
चारुणास्फु-38	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	त्रु	त्रु	0	0	0
इदमुपकृति-39	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	त्रु	त्रु	0	0	0
मुहुरङ्गुलि-40	27	25	26	27	22	22	22	22	22	27	22	22	22	त्रु	त्रु	22	29	22
तस्याः पुष्प-41	28	26	27	28	23	23	23	23	23	28	23	23	23	त्रु	त्रु	23	30	23
रहः प्रत्या-42	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	त्रु	त्रु	0	31	0
सायंतने-43	29	27	28	29	24	24	24	24	24	29	24	24	24	त्रु	24	24	32	24